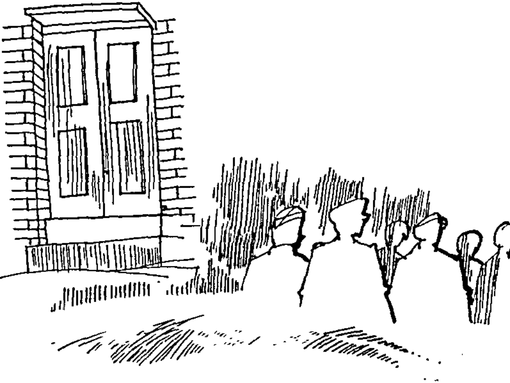
आधीरात : कोई दस्तक दे रहा है



लोकभारती प्रकाशन

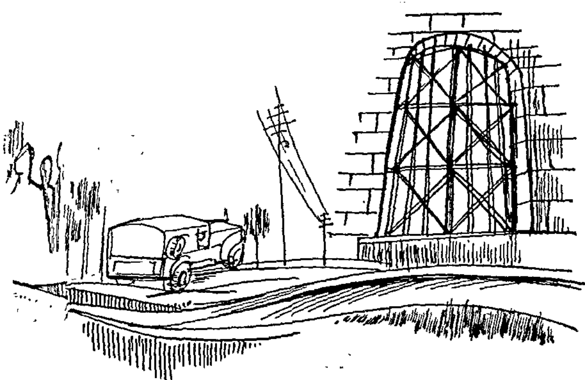
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

आधीरात कोई दस्तक दे रहा है

के० आर० मलकानी
सम्पादक : आर्गेनाइज़र

•

हिन्दी रूपान्तर
श्री नरेश मेहता



Originally published by
VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT LTD
5, Ansari road, New Delhi-110002 (India)
in the English language under the title
THE MIDNIGHT KNOCK

प्रथम हिन्दी संस्करण : 1978

अनुवाद : श्री नरेश मेहता

मूल्य
दस रुपये

मुद्रक
लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

• प्राक्कथन

गिरफ्तारी के एक पखवाड़े के अन्दर ही हिसार में पुलिस ने जेल अधिकारियों से दुरभि करके मेरी डायरी चुरा ली। इस भय से दूसरी डायरी नही रखी कि वह कभी भी फिर चुरायी जा सकती है अतः यह जेल डायरी नही है।

और जेल मे होने के कारण मुझे व्यक्तिगत रूप से पता नही हो सकता था कि बाहरी दुनिया में वस्तुतः क्या घटित हो रहा है—सरकार जनता के साथ कैसा सुलूक कर रही है और लोगों में उसकी क्या प्रतिक्रिया है, इसलिए यह इमरजेंसी का उस रूप में लेखाजोखा नही है।

लेकिन इसे इमरजेंसी के सम्बन्ध में जनांतिक ही समझना चाहिए। एक बन्दी जो देखता है, सुनता है तथा भोगता है उसकी ही यह मर्मगाथा है। उस अर्थ मे यह किसी भी बन्दी का आत्मचरित हो सकती है या बन्दी जीवन के सम्बन्ध में सभी बन्दियों का सर्वोत्कृष्ट दस्तावेज भी।

इसके कई अध्याय, जेल में प्रबन्ध के ढंग पर लिखे गये। लेकिन उस समय मुझे किंचित भी कल्पना न थी कि ये पुस्तक रूप में संकलित तथा प्रकाशित भी होंगे। ये उन दिनों लिखे गये जब कोई भी मुद्रक या प्रकाशक इन्हें छूना भी पसन्द न करता। फिर भी मैंने लिखा, इसलिए कि एक लेखक को लिखना-पढ़ना चाहिए, नही तो उसकी आत्मिक मृत्यु हो जाएगी। इस प्रकार के लिखने में निश्चय ही एक बाध्यता तो है ही।

मैं केवल यह आशा करता हूँ कि 'जेल की ये छायाएँ' पुस्तक के पृष्ठों को गाढ़ी कालिमा से भारी न बना दें। साथ ही यह भी कामना करता हूँ कि इसके द्वारा आँसुओ से अधिक मुसकानो की सृष्टि हो।

—के० आर० मलकानी

• दो शब्द

वैचारिक दृष्टि से मानवीय-मेधा कितनी ही उन्नत या विकसित हो गयी हो परन्तु अपनी सारी सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक प्रतिश्रुतियों के बाद भी राजनीति की प्रकृति अभी भी बहुत कुछ बर्बर ही है। बीसवीं शती में संसार ने नादिरशाहों, चंगेजों के आधुनिक संस्करण बारम्बार देखे। हम भारतीयों को यह खुशफहमी थी कि इतनी दीर्घकालीन दार्शनिक परम्परा, उदार महापुरुषों के जीवन-चरितों के कारण भारत मे कभी कोई अमानवीय, क्रूर, निर्मम तानाशाह नहीं उत्पन्न होगा। गांधी और मान्य लोकतन्त्र की प्रणाली के कारण भी हम आश्वस्त थे परन्तु २६ जून १९७५ को 'समाजवादी' राजनीति भी मध्यकालीन ही सिद्ध हुई। नागरिक स्वतन्त्रता अपहृत कर ली गयी, जबानों पर ताले पड़ गये और देश कारागार में परिणत कर दिया गया। मैं नही मानता कि इन्दिरा नामक एक व्यक्ति के होने, न होने से शासक की यह पाशविक मनोवृत्ति समाप्त हो जाएगी। वस्तुतः इन्दिरा, व्यक्ति का नाम न होकर राजनीति की पाशविक अमानवीय मनोग्रंथि का नाम है। सत्ता का दुरुपयोग सामन्तवाद में ही होता है, यह धारणा कितनी भ्रामक निकली। अकूत सत्ता का तर्क ही होता है व्यक्ति में निर्मम नादिरशाह, हिटलर, मुसोलिनी, स्तालिन या इन्दिरा उत्पन्न करे। इसके लिए हमें राज्य, राजतन्त्र एवं राज-नीति के प्रकारो, सम्बन्धों आदि के बारे में आमूल क्रान्तिकारी ढंग से सोचना ही होगा। सोचने की इस प्रक्रिया में यदि हमें तथाकथित आधुनिक वर्तमान राजनीतिक सिद्धान्तों तथा प्रणालियों की उपादेयता पर प्रश्न-चिह्न भी लगाना पडे, तो लगाना होगा अन्यथा राजनीतिज्ञ की यह इन्दिरा-ग्रन्थि भारत में भी कैंसर का रूप ग्रहण कर सकती है।

मैं सामान्यतः अनुवाद'नहीं करता और विशेषकर प्रतिबद्ध राजनीतिक रचना का तो नही ही। लेकिन 'द मदरलैण्ड' के यशस्वी सम्पादक श्री मलकानी की इस रचना को इमरजेंसी पर निकली अन्य पुस्तकों से भिन्न एवं विशिष्ट पाया। यह एक भोक्ता का दस्तावेज भी है और स्थितियों का अध्ययन भी। हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर जो उनके विचार हैं वे सन्तुलित तो है ही; मानवीय भी हैं। इस

पुस्तक मे मुझे किसी राजनीतिक दल से प्रतिश्रुत व्यक्ति का पूर्वाग्रह नही मिला वरन उन्मुक्त निष्ठा दिखलायी दी। इस रचना में श्री मलकानी के पत्रकार व्यक्तित्व से अधिक एक संस्पर्शी रचनाकार तथा उससे भी ज्यादा समाज से जुड़े हुए एक बुद्धिजीवी के सन्तुलित व्यक्तित्व का परिचय मिला। रचना में जहाँ तीव्र आक्रोश है वहाँ नाटकीयता मिलेगी; जहाँ विश्लेषण है वहाँ ऐतिहासिकता मिलेगी और जहाँ समाज को दिशा देने की कामना है वहाँ मानवीय विनम्रता मिलेगी। शायद इसीलिए मैं इसके अनुवाद के साथ जुड़ सका।

इति नमस्कारान्ते,

—श्री नरेश मेहता

२४ दिसम्बर '७७

६६ ए, लूकरगंज, इलाहाबाद–१

• आधी रात : एक दस्तक

"मलकानी साहब ! मलकानी साहब !"

मैं नींद भरा ही जागा । आश्चर्यचकित था कि इस समय यह कौन पुकार रहा है ? रात गरम थी और मैं थोड़ी देर पहले ही सोने के लिए गया था क्योंकि २५ जून वाले जे० पी० के ऐतिहासिक भाषण का देर रात तक सम्पादन करता रहा था । इसलिए जिस समय यह असामान्य दस्तक और अपने नाम की बेवक्त पुकार सुनी तब तक मैं गहरी नींद में नहीं सोया था ।

कौन हो सकता है ? क्या तारवाला ? ऐसी कोई सम्भावना के स्वागत के लिए मैं तैयार नहीं था । प्रायः तो आधी रात में आने वाले तार किसी मृत्यु या दुर्घटना के समाचार ही लाते हैं । कुछ ऐसी ही आशंका के साथ वस्तुस्थिति का सामना करने के लिए उठा । तारवाला जिस प्रकार आपके हस्ताक्षर के लिए रसीद बढ़ाता है उससे सर्वथा भिन्न दरवाजा खोलने के लिए कहा गया । और दरवाजा खोलने पर मैंने देखा कि एक नहीं अनेक व्यक्ति खड़े हुए हैं ।

"आप मलकानी साहब हैं न ?"

"जी हाँ ।"

"आप को थाने चलना होगा ।"

एक क्षण में ही सारी बात समझ में आ गयी कि यह किसी एक व्यक्ति की आसन्न मृत्यु नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण लोकतान्त्रिक प्रणाली की सम्भावित मृत्यु थी ।

आगन्तुकों को मैंने भीतर चले आने के लिए कहा । अफसर तो भीतर चले आये लेकिन कान्स्टेबिल बाहर ही रह गये । वह नहाने के लिए ही जल्दी समय नहीं था बल्कि चाय के लिए भी । मुझे तैयारी करते देख उन्होंने सुझाव दिया कि मैं कुछ कपड़े भी ले लूँ और दाँतों का ब्रश लेना तो नहीं ही भूलूँ । यह एक

शालीन संकेत था कि मैं जल्दी लौटने की आशा न रखूं। तब मैं झोले में कुछ किताबें और कपडे आदि रखने लगा। लेकिन मेरी पत्नी सुन्दरी उत्तेजित थी। उसने मुझसे तथा उन लोगों से जानना चाहा कि यह सब क्या है ? जब मैंने उसे बताया कि इस सब का तात्पर्य ही यह है कि मैं गिरफ्तार हूँ तो वह 'क्यों' और 'कहाँ' के बारे में पचासो सवाल उनसे करने लगी लेकिन उन्होंने बहुत ही ठडे तरीके से कहा कि मलकानी साहब सब जानते हैं।

जिस समय चलने को तैयार हुआ उस समय रात का लगभग डेढ बज रहा था। मैंने उनसे अपना वारन्ट माँगा, जो कि उनके पास नही था। जिन लोगों के पास मुझे पकड ले जाने का कोई अधिकार नहीं था भला मैं उन्हें आत्मसमर्पण कैसे कर सकता था ? विगत कुछ महीनों से मुझे अपने प्राणों के लिए संकट की आशका होने लगी थी। बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के अजीब-अजीब ढंग के रहस्यमय लोग मेरे कार्यालय मे दिखलायी पड जाते थे। खतरा मुझे स्पष्ट नजर आने लगा था। आफिस आने-जाने के लिए रिज रोड मेरा प्रिय रास्ता था, लेकिन सूर्यास्त के बाद उस पर से आना-जाना मैंने बन्द कर दिया। चूंकि इस समय मेरे सामने प्राणों का संकट उपस्थित था इसलिए बिना वारन्ट के उनके साथ जाने में मैंने अपनी असमर्थता बतलायी। लेकिन उनका आग्रह था कि मैं पुलिस स्टेशन चल कर सम्बन्धित अफसर से बातें कर लूं। अतः समझौता यह हुआ कि मैं उनके साथ अकेला नही जाऊँगा। अतः सुन्दरी ने पीछे का दरवाजा खोला ताकि वह हमारे उन पडोसी महाशय को बुला लाए, जो कि थोडा-बहुत कानून और पुलिस की पद्धति से परिचित थे। जैसे ही उसने पीछे का दरवाजा खोला तो उसने देखा कि पुलिस के लोग पिछवाडे को भी घेरे हुए है। जाहिर था कि उन्होंने घर की पूरी घेरे बन्दी कर रखी थी ताकि मैं किसी ओर से भाग न निकलूं।

ऐसी स्थिति में मैंने पुलिस वालों से पूछा कि क्या मैं फोन कर सकता हूँ ? जब उन्होंने मेरी इस बात का न 'ना', न 'हाँ', कोई जवाब नही दिया तो मैंने अपने आफिस मे फोन किया। उन्हे सारी सूचना दी और कहा कि वे तत्काल संघ, जनसंघ, पी० टी० आई० और यू० एन० आई० को भी खबर कर दें। मेरा यह फोन, मैं समझता हूँ कि उन सारे लागो के लिए सामयिक चेतावनी थी जो बाद में पुलिस के शिकंजे से अपने को बचा सके। जाहिर था कि दिल्ली में उस रात गिरफ्तार किये जाने वालों मे मैं पहला व्यक्ति था। "द मदरलैण्ड" के लेख घर तक पहुँच गये थे।

जैसे ही चलने को हुआ कि सुन्दरी ने चाहा कि वह बच्चों को जगा दे लेकिन मैं नही चाहता था कि बच्चे इस विषम स्थिति का सामना करें इसलिए सबसे बड़े सत्रह वर्ष के अरविन्द को ही जगाया गया, जो कि उस समय जो घटित हो रहा था उसे देख कर चकित था। ज्योंही विदा लेकर बाहर जाने को हुआ त्योंही मुझे लगा कि शायद अब मैं फिर कभी न लौटूं इसलिए मैंने चाहा कि मैं अपनी दस वर्ष की बिटिया सिन्धु और आठ वर्ष के विक्रम को प्यार करता चलूं। लेकिन मेरा यह प्यार करना पुलिसवालों को कही मेरी कमजोरी या भावुकता न लगे इसलिए मैं सीधा जाकर जीप में बैठ गया। जैसे ही जीप रवाना हुई कि बगल वाले लान से कुछ और भी पुलिस वाले निकल आये, स्पष्ट था कि पुलिस ने सारे रास्तों की नाकेबन्दी कर रखी थी यह एक सफल धावा था। अब तक मैंने यह पढा ही था कि इस प्रकार के छापे और आधी रात मे दरवाजों पर दस्तकें रूस में ही दी जाती हैं, लेकिन मैंने इस बार भारत में भी सुनी और अनुभव कीं।

सवेरे जब सिन्धु और विक्रम जागे तो वे एक-एक लाठी लेकर तैयार हो गये। जैसा कि मुझे बताया गया कि वे दोनों दिन भर पूरे घर के चक्कर लगाते रहे और उस 'महिला' को मारने की ताक में रहे जो कि उनके पिता को गिरफ्तार करके ले गयी थी। उनकी यह इच्छा अवश्य पूरी हुई लेकिन इक्कीस महीने बाद; जबकि देश का साधारण जन तक "जनता पार्टी जिन्दाबाद" हुंकार उठा था!

जब हम न्यू राजेन्द्र नगर पुलिस स्टेशन पहुँचे तो वहाँ एक पुलिस अफसर को छोड और कोई नही था। लगभग एक घण्टे के बाद ढाई बजे के आसपास भारतीय जनसंघ के उपाध्यक्ष डा० भाई महावीर वहाँ लाये गये। यह देख कर मन को शान्ति हुई कि मैं अकेला नहीं हूँ। मैंने तब साथ आये अपने पडोसी का आभार प्रकट किया और उन्हे विदा किया। हम वहाँ थोड़ी देर प्रतीक्षा करते रहे। बाद में पुलिस के और लोग लौटे और उन्होंने थाने में सूचना दी की जिन दो और को लाया जाना था उनका कही पता नही है। हमें नव डिफेन्स-कालोनी पुलिस स्टेशन लाया गया। यहाँ हमे हमारी ही तरह गिरफ्तार करके लाये गये कई दूसरे लोग मिले। इनमें अधिकांश जनसघ और आनन्द मार्ग के थे। केवल एक ही मार्क्सवादी था। क्या विषमता थी कि यहाँ पहुँचने पर ४ २० पर हमें मीसा के वारन्ट थमाये गये।

जब हमें सिविल लाइन्स पुलिस प्रमुख कार्यालय पहुँचाया गया तब भी काफी अन्धेरा था जहाँ खासे राजनीतिक नेताओं की भीड़ दिखलायी दी। थोड़ी-थोडी

देर में कोई-न-कोई नामी नेता लाया जाता। शीघ्र ही हमारे बीच बीजू और पीलू, राजनारायण और चन्द्रशेखर तथा और भी कई पहुँच चुके थे। सूर्योदय के पहले ही हम दस को एक पुलिस की गाडी मे बैठाया गया। मेरे अतिरिक्त तथा ऊपर जिनका उल्लेख हो चुका है के अलावा सासद समरगुहा, रामधन, भूतपूर्व सांसद डा० महावीर, मेजर जयपाल सिंह (मार्क्सवादी-कम्युनिस्ट), तथा एक सरदार बख्शी भी थे। गाडी में पहुँचते ही तीन सीट में से एक पर राजनारायण ने होल्डाल का तकिया बनाया और पसर गये। लेकिन जब होल्डाल सिर के नीचे से गिरा तो उन्होंने बहुत शांति से उसे ठीक किया और फिर सो गये। बहादुर गढ पर हमे उपेक्षा पूर्ण चाय दी गयी। यहाँ भी हमें नहीं बताया गया कि कहाँ ले जाया जा रहा है, जब तक कि हम रोहतक जेल नही पहुँचे।

जेल के दरवाजे खोलने में अधिकारियों को कुछ समय लगा। इस बीच साथ में आये अनिच्छुक रक्षकों को हमने बाध्य किया कि हमें नीचे उतर कर ताजी हवा लेने दे। जब आदेश मिला कि भीतर ले आएँ तो हमे गाडी मे बैठने के लिए कहा गया। हमने पैदल चलना ही पसन्द किया। यद्यपि यह उन्हें प्रिय नही लगा परन्तु वे कर भी क्या सकते थे। मैंने जब मुड कर देखा तो पाया कि हम सब के पीछे एक-एक दारोगा अस्त्र से लैस चल रहा था। जाहिर था कि अधिकारियों ने हमे इस योग्य तो समझा ही कि हम भाग सकते हैं, भले ही पूरी तरह अन्तर्ध्यान न हो सके।

ड्योढी पर, जहाँ कि जेल का कार्यालय है, आरम्भिक खानापूरी के बाद हमें मनोरंजन-कक्ष नामक सामूहिक हाल में ले जाया गया। यहाँ घुसते ही किसी ने कहा कि हम एक सप्ताह मे ही मुक्त हो जाएँगे जबकि दूसरे का ख्याल था कि शायद एक मास मे, परन्तु बीजू पटनायक ने 'आजीवन' कहा। जब किसी ने उनकी बात का विरोध किया तो वह बोले, "तो फिर, दस वर्ष"। आगे बोले *"मैं श्रीमती जी को जानता हूँ कि वह कितनी निर्मम हो सकती है"* और हम सब सहमत थे कि हम सब से ज्यादा वह उन्हे जानते हैं।

हाल में हमने देखा कि लगभग एक दर्जन खाटें चेन से बँधी पडी थी और— हम जेल में थे।

अशोक मेहता और सिकन्दर बख्त भी आध घंटे के बाद हममें शामिल हुए। इसके बाद ही रेडियो ने यह घोषणा की कि राष्ट्रीय आपात्कालीन स्थिति लागू कर दी गयी है। आपात्काल ? हम आश्चर्य कर रहे थे कि सन् १९७१ के बांग्लादेश-मुक्ति-युद्ध के समय की आपात्कालीन स्थिति देश मे लागू थी ही तब

दूसरी किसी इमरजेन्सी की क्या आवश्यकता थी ? यह बात मालूम होने में थोड़ा समय और लगा कि बाह्य और आन्तरिक आपात्काल के अतिरिक्त एक तीसरी इमरजेन्सी भी हुआ करती है—आर्थिक ! इस स्थिति की पूर्वकल्पना हममें से किसी को नही थी क्योकि हमें विश्वास था कि सरकार लोकतान्त्रिक खेल को लोकतान्त्रिक नियमो से ही खेलेगी; जबकि कही पर कोई हिंसा तक नही हुई थी ताकि धारा १४४ का लागू किया जाना भी उचित ठहराया जा सके। यद्यपि सरकार ने गुजरात और बिहार की "स्थिति" को लेकर काफी तमाशा खड़ा किया था, लेकिन सच्चाई यह थी कि गुजरात मे शातिपूर्ण चुनाव हो चुके थे और वहाँ लोकप्रिय शासन भी स्थापित हो चुका था। जहाँ तक बिहार की बात थी तो मुख्य-मन्त्री जगन्नाथ मिश्र ने आपात्काल की घोषणा के तीन दिन पूर्व ही यह कहा कि 'राज्य मे पूर्ण शांति है'।

जून १९७५ मे आयोजित दिल्ली मे संगठन-कांग्रेस, भारतीय लोकतान्त्रिक-दल, सोशलिस्ट-पार्टी और जनसघ की सम्मिलित कार्यकारिणी की बैठक में समर गुहा ने 'मार्शल-ला' आदि के खतरे के बारे में कहा था लेकिन स्वयं उन्हे भी इमरजेन्सी की सम्भावना की कल्पना नही रही होगी। हमने उनकी इस बात को अनावश्यक भावुकता माना, लेकिन परिणाम था कि हमे 'मार्शल-ला' से कही अधिक मिला, जो मिला वह सारे कानूनों की हत्या थी—जगल का कानून।

और अब आये दिन डी० आई० आर० मे पकडे गये पताड़ितो से जेलों की कोठरियाँ भरने लगी। बाद में आने वालों पर जिनमें कि अधिकाश वकील और अध्यापक थे यह चार्ज लगाया गया कि वे ट्रेने गिराने और अन्न के गोदामो को लूटने के षड्यन्त्र कर रहे थे। एक बार जब हम सब एक बैठक मे मिले तो मालूम हुआ कि हममे सात सम्पादक और बीस वकील हैं।

एक शाम हमे कुछ राइफलो के चलने की आवाज सुनायी दी। यह क्या हो सकता है ? क्या विरोध करने वालो पर पुलिस ने गोलियाँ चालायी है ? कदाचित। एक स्थानीय कैदी ने हमे बतलाया की ब्याह-शादी के मौकों पर इस प्रकार बन्दूके दागना हरियाणा मे आम बात है।

जिन लोगों ने इमरजेन्सी के विरुद्ध जन-आक्रोश के उबल पड़ने की आशा की थी उन्हें थोड़ी निराशा हुई थी कि कही भी जनता की कोई प्रतिक्रिया नही थी। फिर भी अधिकांश बन्दियों को जरा भी शक नही था कि लोग भय के प्रशासनिक दबाव मे लुञ्ज कर दिये गये थे और उनसे यह आशा करना कि वे काम बन्द कर देंगे, घरो से निकल कर कोर्ट गिरफ्तारियां कराएँगे, उचित नहीं था। लेकिन इन बन्दियो को इसमें भी शक नही था जो कि कालान्तर मे सही

सिद्ध हुआ—कि लोग किसी तरह समय गुजार रहे थे ताकि मौका आने पर चोट की जा सके।

हर आदमी शांत और निश्चिन्त था। जैसा कि एक रोमेन्टिक मित्र ने इस स्थिति का बिम्ब प्रस्तुत किया था कि—"बलात्कार जब अनिवार्य हो जाए तो निश्चिन्त होकर उसे भोगना चाहिए।" मैं नहीं जानता कि हमने भोगा कि नहीं परन्तु निश्चिन्त अवश्य हुए। पीलू 'वालीवाल' में जुट गये जबकि दूसरे अध्ययन, ताश या शतरञ्ज में व्यस्त हो गये। महाशय राजनारायण मालिश करवाते और तुलसीदास की चौपाइयों से हम सबका मनोरंजन करते। स्वामी इन्दरवेश से प्राप्त गेरुआ कुरता और धोती में चन्द्रशेखर दिखलायी पड़ते।

६ जुलाई को बहुत देर रात मे चन्द्रशेखर को छोड़ने के आदेश आये लेकिन ऐसे वेवक्त जाने से उन्होंने इंकार कर दिया। वेवक्त के अलावा वालीबाल खेलते हुए अँगुली में मोच के कारण बुखार भी था। दूसरे दिन फूल-मालाओं से हमने उन्हे विदा दी। युवा-बन्दियों ने उन्हे 'भारत का भावी प्रधान-मंत्री' कहकर जयकार किया।

चारो ओर झूठ और मिथ्या का जो तूफान खड़ा किया गया था उस पर, जेलों मे होने पर भी हमे हँसी आती थी और हम आये-दिन नीति आदि की शाश्वत कथाओ से अपना मनोरंजन करते रहे।

क्यो जी, इन श्रीमती को वह विवादास्पद मिंक-कोट कैसे प्राप्त हुआ? श्रीमती जी का कथन था कि एक बार लन्दन मे उन्हे खूब जाड़ा महसूस हुआ और उन्होंने एक मिंक-कोट किराये पर लिया। जब 'पापा' ने कोट देखा तो उन्होंने 'बिटिया' के लिए एक खरीदने का निर्णय लिया। और क्या यह सच है कि एक मिंक-कोट ५० लाख रुपये मे आता है? और क्या यह खर्चा नेहरू जी के किसी आय-व्यय के लेखा-पत्र में दिखलाया गया है? यदि नही, तो क्यों नहीं? इसके लिए वह इतनी विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध कैसे कर सकें? या मैडम यह जानती हैं कि यह अमूल्य कोट उपहार था? यदि हाँ, तो किसके द्वारा? और किस बात का?

क्या यह सच है कि 'पापा' के साथ एक रूस यात्रा के अवसर पर ख्रुश्चेव ने इन मैडम को एक अद्वितीय 'काला कोट' उपहार में दिया था? क्या यह सच है कि उस कोट की अतिरिक्त विशेषता यह थी कि वह रूस की अन्तिम जारीना का था? और उसका मूल्य भी ५० लाख था? आज वह कोट कहाँ है? ये दोनों कोट लन्दन के समूर-रक्षकों के पास रखे हुए हैं? यदि हाँ तो उनकी देख-रेख के लिये कितना वार्षिक खर्च आता है?

सऊदी अरब की यात्रा के दौरान श्रीमती गांधी को शाह सऊद ने एक मूल्यवान हार उपहार मे दिया था। डा० लोहिया ने लोक-सभा मे यह प्रश्न उठाया था। उस पर यह कहा गया था कि वह हार सरकारी तोशाखाना में जमा कर दिया है। तब लोहिया जी ने यह आशंका प्रकट की थी कि जो हार तोशाखाना में जमा किया गया, सम्भव है वह मूल हार की नकल हो। वास्तविकता क्या है ? क्या यह सच है कि तोशाखाना मे जमा किया हुआ हार बारह हजार रुपये के नगण्य मूल्य मे बेच दिया गया ? क्या यह सच है कि इस मूल्य का स्पष्टीकरण कभी भी सार्वजनिक रूप से इस डर के मारे नही किया गया कि सऊदी अरब इस बात का विरोध करेगा कि उक्त हार बहुत अधिक मूल्यवान था ?

जैसा कि हम जानते है कि १९६२ के चीनी आक्रमण के बाद ही 'रॉ' का गठन किया गया था। इस सस्था का मुख्य उद्देश्य कम्युनिस्ट आन्दोलन मे विभाजन करना था। लगभग १६० कम्युनिस्ट नेताओ और कार्यकर्ताओं को १७५० रुपये प्रति मास के हिसाब से दिये जाते थे। इन्ही महाशयों की सहायता से कम्युनिस्ट पार्टी सी० पी० आई० और सी० पी० आई० (एम०) में विभाजित हुई। आज भी इनमे के कुछ सज्जन इन दोनों पार्टियो में शीर्षस्थ बने हुए हैं।

अनेक गरम खबरों के लिये ढेर सारा मसाला था परन्तु अखबार जैसे मृत थे और उनमे इस बारे मे कोई समाचार नही होते थे।

हममे से बहुत से, थोडे से कपडे ही लेकर आये थे ताकि एक आध सप्ताह काम चल सके। हम अपने परिवारो को सूचना देने के लिये उत्सुक थे कि हम रोहतक मे हैं तथा जीवित और आराम से भी। हमारे स्थानीय मित्रो ने एक सन्देश-वाहक का प्रबन्ध भी कर लिया, जो हमारे पत्र बाहर ले जा सकता था और दिल्ली में हमारे लोगों से मिल सकता था। दूसरे दिन हमे अपनी चीजें और पत्र, बदले मे मिले। मेरे लिए एक बोनस था कि दिल्ली मे मेरे मरने की अफवाह बहुत गरम थी। कई लोगों ने मेरे 'स्वास्थ्य' की विनम्र जानकारी के बहाने यह बताया कि सुन्दरी विभिन्न अस्पतालो के केज्यूएल्टी-वार्डों मे जाकर मुझे खोज आयी है; पहला जीवन खोये बिना ही दूसरा जीवन प्राप्त करना कितना अच्छा है।

यह भी मालूम हुआ कि आपातकाल के तत्काल बाद निकाला गया एक पृष्ठ वाला 'द मदरलैण्ड' का अतिरिक्त अक बीस रुपये तक बिका। 'द मदरलैण्ड' पुलिस के द्वारा बन्द कर दिया गया था परन्तु इसके पूर्व ही वह अखबार अपने जीवन का सबसे बड़ा नाटकीय धमाका प्रस्तुत कर चुका था। पूरे भारत मे वही एक मात्र अखबार था जिसने कि २६ जून की इमरजेन्सी की सूचना, नेताओ की

गिरफ्तारी और राष्ट्र को मिले धक्के को वाणी दी थी कि इमरजेन्सी लागू थी। लेकिन 'द मदरलैण्ड' वाली घटना से हम आश्वस्त थे कि इमरजेन्सी हो चाहे न हो, लोगों को बहुत देर तक दबाये नही रखा जा सकता। यह सब पढ़ा जाना आन्दोलित करता था।

२५ जून की रात मे घर जाने से पहले ब्यूरो के प्रमुख, अरविन्द घोष ने प्रमुख सहायक मान से कहा था कि यदि रात में किसी भी समय कुछ महत्त्वपूर्ण घटे तो उन्हें फोन से सूचित किया जाए। रात में १-४० पर मेरी गिरफ्तारी की उन्हें सूचना मिली और घोष दो बजे कार्यालय मे थे। सवेरे तीन बजे तक अखबार का पहला पृष्ठ गिरफ्तारी की विभिन्न कहानियों से भरा हुआ धमाके के लिए तैयार था।

तभी सहसा बिजली कट गयी। चारो तरफ हताशा छा गयी। स्पष्ट था कि कार्यालय की इस बिजली कटने का गिरफ्तारियों से सम्बन्ध है क्योंकि बगल के सी० पी० आई० के हिन्दी दैनिक 'जनयुग' मे बिजली जल रही थी। जब प्रेस के कार्यकर्त्ता इस गड़बडी की पूछताछ के लिए बाहर गये तो शक की संपुष्टि हुई। उन कार्यकर्त्ताओं की पुलिसवालो से भेंट हुई और उन्होंने कहा—"अखबार का दफ्तर है न ? बिजली नही आएगी, चले जाओ यहाँ से।"

२६ जून के प्रातः संस्करण के मामले में हम छले गये थे। केवल "द हिन्दुस्तान टाइम्स" ही रात की घटनाओ के समाचार दे सका; मेरी गिरफ्तारी बहुत छोटे मे दी *गयी थी। बाकी की गिरफ्तारी की खबरें बहुत देर से आयी थी* इसलिये न 'द हिन्दुस्तान टाइम्स' और न ही कोई अन्य पत्र प्रातः संस्करण मे दे सका। तभी सवेरे दस बजे के आसपास बिजली फिर आ गयी। उस समय कार्यालय मे सहायक सम्पादक डी० एन० सिंह, दुबाशी और राजे; समाचार सम्पादक जयराम; ब्यूरो के मुख्य, घोष; मुख्य सवाददाता बतरा; 'आर्गेनाइजर' के सम्पादक भाटिया *तथा 'द फिनान्शल एक्सप्रेस' से खास तौर से सहायता के* लिए आये वीरेन्द्र कपूर मौजूद थे। यह तय किया गया कि एक विशेषांक निकाला जाए।

कुछ तो पूरे जोर-शोर से विशेषांक मे लग गये और कुछ मेरे निवास पर गये। जैसा कि बाद मे उन्होंने बताया, मेरी पत्नी ने बिना किसी घबराहट के मेरी गिरफ्तारी की चर्चा की तथा 'द मदरलैण्ड' के बारे मे सारी जानकारी हासिल की। उन्होंने कहा कि "नैतिक दृष्टि" से बलशाली होकर वे लोग कार्यालय वापस लौटे।

११ बजे टेलीप्रिन्टर पर अशुभ समाचार आया—"फ्लेश ! फ्लेश ! फ्लेश ! सेन्सरशिप लागू कर दी गयी, फ्लेश ! फ्लेश ! फ्लेश ! सेन्सरशिप लागू कर दी गयी।" उन लोगों ने समाचार पढ़ा, उसके टुकडे-टुकडे कर डाले और पैरों से कुचल डाला। "चाहे जो हो जाए लेकिन 'द मदरलैण्ड' के लिए कोई सेन्सरशिप नही है," सब को यही सामूहिक प्रतिक्रिया थी।

सारे कार्यकर्त्ता जानते थे कि 'द मदरलैण्ड' का यह अन्तिम अक होगा। हर मिनट के बीतने के साथ बिजली कट जाने का भय बढता जाता था। लेकिन वे भाग्यवान थे। पता नही किस सहृदय मित्र ने बिजली पुनः चालू करवायी थी या कौन अक्षम व्यक्ति था जो बिजली काटना भूल गया था, वास्तविकता कभी नही जान पाएँगे। यह भी सम्भव था कि बिजली जानबूझ कर पुनः चालू की गयी हो ताकि हम बिना सेन्सर किया संस्करण प्रकाशित करें, जिसे इमरजेन्सी के नियमो का उल्लंघन कहा जाए, और इसी बहाने से कार्यालय में ताला लगाया जा सके। जो भी बात रही हो, दिन भर प्रेस उस अतिरिक्त अक की सैकड़ों प्रतियाँ छापता रहा जिसने कि दिल्ली मे तूफान बरपा। गरम-गरम रोटियाँ कभी-भी इतनी सरगर्मी से नही बिकी होंगी। पुलिस ने अखबार बेचने वालो और खरीदने वालों को समान रूप से पीटा। नतीजा जाहिर था कि उस अतिरिक्त अंक की महत्ता और मूल्य दोनो ही बढ़े। यद्यपि दो पृष्ठ के उस अतिरिक्त अंक का दाम दस नये पैसे ही था लेकिन वह बीस रुपये तक भी बिका। एक राजनयिक ने तो उस ऐतिहासिक अक की कीमत १४½ रुपये तक चुकायी। शाम को कही जाकर पुलिस हमें गिरफ्त मे ले सकी।

रात को दस बजे जब २७ जून का डाक संस्करण, जिसमे कि 'फार हूम द बैल टोल्स' शीर्षक से दुवाशी का सम्पादकीय था, जा चुका; तब पहाड़गंज के एस० एच० ओ० श्री बख्शी पहुँचे। कार्यालय की सीढियाँ उतरते हुए घोष और बतरा से उनका सामना हुआ और उन्होंने जवाब तलब किया कि कार्यभार किसके जिम्मे है तथा गैर-कानूनी अलिखित अंक निकालने का दायित्व किस पर है? श्री बख्शी को बताया गया कि सम्पादक जेल में है और कार्यभार किसी पर नही है। एस० एच० ओ० गरजा—"मुझे बेवकूफ बनाने की कोशिश मत करो।" और उसने घोष तथा बतरा से कहा कि उन्हे गिरफ्तार किया जाता है। जिस समय अक की बाकी कापियाँ जब्त की जा रही थी, बिजली चली गयी। दुबारा हुए इस अंधकार का लाभ प्रेस सुपरिंटेन्डेन्ट मलिक तथा उनके कर्मचारियों ने यह उठाया कि उन सारे मूल कागजो को नष्ट कर दिया जिन पर कि लेखों के लेखकों के वास्तविक नाम थे। पुलिस ने कार्यालय के ताले से ही हमारे कार्यालय

की तालेबन्दी की।

परामर्श के बाद अखबार के चार प्रमुख व्यक्तियों के नाम डी० आई०आर० वारन्ट जारी किये गये जिनमें—मुख्य सहायक सम्पादक डी० एन० सिंह, मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रज भूषण, कार्यकारी, वितरक मैनेजर बलदेव मलिक तथा 'ऑरगेनाइजर' के सम्पादक वी० पी० भाटिया थे। कार्यालय की तालाबन्दी का औचित्य सिद्ध करने के लिए चार व्यक्तियों को भगोड़ा घोषित किया गया और कहा गया कि प्रेस उनकी सम्पत्ति थी।

* * *

२

• गड़गड़ाहट

मुझे यह अवश्य कहना चाहिए कि २६ जून सर्वथा आश्चर्यचकित करनेवाली घटना थी। जब चार दलों की कार्यकारिणी की बैठक में समरगुहा ने इसकी आशंका की चर्चा की थी तब उस समय हम मुसकरा उठे थे। इसलिए नही कि कोई इस बारे में कुछ कर सकता था वल्कि उस समय वह बात दूर की कौड़ी लगी थी।

मैंने इस प्रकार की सम्भावना के बारे मे एक से अधिक बार सुना भी था परन्तु मैंने उन अफवाहों को कभी विश्वसनीय नही माना। ऐसी सारी बाते तब कितनी असम्भव और सीमातीत लगती थी। लेकिन फिर भी वास्तविकता में असम्भव आखिरकार घट ही गया।

मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा कि इस योजना की तैयारी का प्रारूप बरसों से फाइलों मे रहा हो। यह माना जाता है कि भारत-विभाजन की योजना प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व ही जन्म ले चुकी थी। प्रायः इस प्रकार की योजनाएँ अनेक आकस्मिक योजनाओं में से एक हुआ करती हैं। जरूरत के मुताबिक आकस्मिक योजना सामने धर दी जाती है।

आखिर २६ जून की योजना कार्यान्वित हुई क्यों? इसलिए कि वर्तमान सरकार की स्थिति समर्थन के योग्य नही रह गयी थी। सहन की सीमा से परे उसकी स्थिति खराब हो चुकी थी। विरोधियो की जानकारी से भी ज्यादा भयकर रूप में सरकार की स्थिति अपनी भूमि से कट चुकी थी। अमृतसर, दिल्ली, रोरी, मेहम और जबलपुर के उपचुनावों ने कांग्रेस को गहरा धक्का दिया था। इन्दिरा-कांग्रेस की विश्वसनीयता को १२ जून के इलाहाबाद और अहमदाबाद के उपचुनावों ने पूरी तरह विनष्ट कर दिया था। और इन सबके ऊपर चार प्रमुख विरोधी पार्टियों की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक का होना भी था।

सहसा इन्दिरा-कांग्रेस के विकल्प के रूप मे विरोधियों का एक अजेय दल बनता दिखलायी दिया। अब यह लोगों के सामने था कि किसी भी समय इस दल को चुन ले। सरकार पूरी तरह असुरक्षित अनुभव कर रह थी। वह जान रही थी किसी भी समय उचित चुनाव होने पर उसके पैर उखाड़ दिये जाएँगे। इस वास्तविकता को रोकने के लिए ही २६ जून को हड़ताल आयोजित की गयी थी। इस अन्तिम हथियार के प्रयोग ने ही सरकार को अन्तिम रूप से उस नगण्य स्थिति मे पहुँचाया जहाँ कि वह बाद मे पहुँची।

पूरी तरह आधुनिक लोकतांत्रिक परिस्थिति के प्रति यह एक अजीब सामन्तवादी अभिरुचि थी। मुगल राजकुमार ही 'तख्त या तख्ता' के मुहावरे मे सोचा करते थे। और 'प्रगतिशील' सरकार की 'माताजी' ने भी शांति से सत्ता सौंप देने के स्थान पर सोचा कि 'मारो या मार डालो।'

क्या मैंने कभी ऐसी परिस्थिति की आशा की थी! नही। मैंने कभी नही सोचा था कि महज अपनी सनक मे कोई सरकार अकारण ही इमरजेन्सी लाद देगी तथा लोगो की स्वाधीनता एवं अधिकारों का हनन कर देगी। कुछ महीने पहले 'दीन दयाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' ने इमरजेन्सी पर एक उच्च स्तरीय सेमीनार का प्रस्ताव किया था, जो कि बाद में सम्पन्न भी हुआ, मुझे तब बड़ा आश्चर्य हुआ था कि यह किस बात को लेकर होहल्ला है। क्योंकि इमरजेन्सी तो सन् १९७१ से ही चल रही थी और उससे किसी की हानि भी नही हुई थी। यह तो अप्पा घटाटे ने, जो कि सुप्रीम कोर्ट के एक प्रखर वकील थे, स्थिति स्पष्ट की और मुझे तब इमरजेन्सी के सम्भावित खतरे दिखलायी देने लगे। लेकिन फिर भी अपने राजनीतिक ढाँचे मे लोकतंत्रीय प्रणाली इतनी मान्य लगती थी कि मैं किसी राजनीतिक सर्वनाश की खबरो को कोई महत्त्व नही देता था। जब कभी डिक्टेटरशिप लादे जाने की खबरें मिलती और जब उसका कोई प्रमाण नही मिलता तो मैं इस भय को निर्मूल समझता।

सन् १९७४ के आरंभिक जून में मैंने सुना कि कुछ कांग्रेसी जे० पी० और दूसरे असन्तुष्ट नेताओं को अकेला कर देने की फिराक मे हैं। मैं भौंचक रह गया। ७ जून १९७४ के 'द मदरलैण्ड' मे यह समाचार मुखपृष्ठ पर बाक्स में प्रकाशित हुआ।

इस भय की सपुष्टि १२ जून को जे० पी० के पटना वाले जुलूस पर 'इन्दिरा ब्रिगेड' के मुख्य कार्यालय से हुई गोलीबारी से हुआ। कांग्रेस अध्यक्ष शर्मा ने कांग्रेस का, इन्दिरा-ब्रिगेड से कोई सम्बन्ध है इसको अस्वीकार किया। और हमें मालूम हुआ कि यह 'रॉ' की कारस्तानी थी।

और इस बात ने यह स्पष्ट किया कि यह उच्च स्तरीय गुप्त जासूस संस्था ारत में राजनीतिक हत्याएँ वैसे ही करवाती है जैसे कि एफ० बी० आई० और ो० आई० ए० अमरीका में करती हैं।

जनवरी १६७५ में जब मुजीब ने डिक्टेटरशिप हथियायी तब मुझे वाता- रण में खतरे का अहसास हुआ। जब श्रीमती गांधी और राष्ट्रपति ने जल्दी से ़ुजीव की अभ्यर्थना की तब मुझे लगा कि हो न हो इस विप्लव में श्रीमती का रामर्श रहा हो। २८ जनवरी १६७५ के 'द मदरलैण्ड' के सम्पादकीय में दिल्ली के लिए ढाका में रिहर्सल' के शीर्षक से देश को सूचित भी किया गया।

इस परेशानी को लेकर मैं अपने एक मित्र से, जो कि अवकाश प्राप्त सेना के ानरल थे, मिला और जानना चाहा कि इस सारी स्थिति के बारे में वह या सोचते हैं, क्या मैडम यहाँ ऐसा कर सकती हैं, या सेना क्या मैडम का साथ ेगी? उन्होंने बताया कि भारतीय सेना गैर-राजनीतिक है, और 'मार्शल-ला' ो व्यवस्था का कानून है, जिसके अन्तर्गत सेना के जनरल, राजनीतिज्ञों के प्रति ाटस्थ रहते हैं। आश्चर्य तो यह था कि इस मीटिंग, जो कि बड़े ही खुले रूप में ेरे कार्यालय के कमरे में ही हुई थी, के बारे में तया हुई बातों के बारे में भी ़रकार को मालूम हो गया। इस बारे में जनसंघ के एक सासद से 'मैडम' ने शिकायत की; जैसे कि किसी अवकाश प्राप्त जनरल से किसी पत्रकार का बात करना गुनाह है। जीवन और स्वाधीनता को कष्ट साध्य बनाने वाली इन जासूसी हरकतों को लेकर मैं चिन्तित हो उठा। लेकिन फिर भी मुझे यह आशा नहीं थी कि इमरजेन्सी के द्वारा सारे राष्ट्र को निगल लिया जाएगा।

२६ जनवरी १६७५ के गणतन्त्र-दिवस के राष्ट्रपति-भवन वाले आयोजन में हर्षदेव मालवीय तथा प्रोफेसर एस० स्वामी ने आगाह किया कि हम जो कुछ कर रहे है और कह रहे हैं, के बुरे नतीजे हो सकते हैं। कम्युनिस्ट कांग्रेसी नेता होने के कारण तथा केन्द्रीय मन्त्री केशव देव मालवीय के भाई होने के कारण निश्चय ही वह जानते थे कि क्या आसन्न घटित होने वाला है। मैं अपनी अबोधता में आश्चर्य ही करता रहा कि मेरा यह क्या कर सकते हैं—कानून के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जा सकता है या बहुत हुआ तो मामला प्रेस-कौंसिल को भेजा जा सकता है।

इसके बाद ही एक दिन सरकारी प्रतिष्ठान के एक प्रियपात्र 'तेज' के विश्व बन्धु गुप्त ने बताया कि 'द मदरलैण्ड' की बॉक्स-खबरें खासी तेज होती है लेकिन पता नही कि वे सब सच हैं या नही। मैंने कहा कि यदि वे असत्य होती तो मुझ पर कब का मुकदमा चल गया होता और पकड लिया गया होता। इस पर

उन्होंने कहा, "तुम पर मुकदमा न चलाया जाए यही निर्णय किया गया है।" मैंने और भी आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "यह इसलिए कि वे जानते हैं कि कोर्ट में हम इनसे कही अधिक भयंकर बाते प्रकट कर सकते हैं ?" उत्तर मे गुप्त चुप ही रहे।

३० जनवरी की शाम को अटल जो ने फोन किया और उन्होंने पूछा कि मैं क्या कर रहा हूँ ? जब मैंने कहा कि मैं सोने जा रहा था तो उन्होंने उत्सुकता से कहा, "सोने को अब भूल जाओ और सीधे यहाँ चले आओ।" जब मैं उनके निवास पर पहुँचा तो देखा कि बहुत से मित्र पहले मे ही वहाँ जमा थे। हमें बताया गया कि जे० पी० तथा कई लोगों को गिरफ्तार करने, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध, 'द मदरलैण्ड' को बन्द करने आदि की अनेक भीषण योजनाएँ तैयार हो चुकी हैं। वहाँ से मैं सीधा आफिस पहुँचा और उस देर रात मे भी इस सम्बन्ध में एक समाचार तैयार किया। समाचार इस प्रकार था—नयी दिल्ली, ३० जनवरी भारत सरकार ने राष्ट्रीय स्वयसेवक-संघ पर प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय ले लिया है। उसने श्री जयप्रकाश नारायण को भी गिरफ्तार करने का निश्चय कर लिया है।

दो-तीन फरवरी की रात्रि में संघ पर प्रतिबन्ध लग जाने की आशंका है तथा ३ फरवरी को पटना पहुँचने पर जयप्रकाश जी की गिरफ्तारी की सम्भावना है।

"मैं किसी सीमा तक भी जाने को तैयार हूँ"—श्री गफूर की यह उद्घोषणा प्रधानमन्त्री के निर्णय की सम्पुष्टि करती है। ...

इस सप्ताह के शुरू में मंत्रिमंडल की राजनीतिक मामलों की समिति के द्वारा ये दोनों निर्णय लिये गये हैं। सन् १९६९ मे प्रधानमन्त्री के मध्यरात्रीय पत्रों के प्रणेता पश्चिम-बंगाल के मुख्य-मन्त्री श्री सिद्धार्थ शंकर राय ने इस अधिनियम के बनाने में सहयोग दिया है।

यह अधिनियम पूर्वकथित झूठ को दुहराता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ एक गुप्त संस्था है जो कि अहिंसा मे विश्वास नहीं रखती है। संघ और जे० पी० के आन्दोलन से जो हिंसा का वातावरण उपजा है वह श्री ललित नारायण मिश्र की हत्या का निमित्त भी है।

३ दिन पूर्व ही इस पत्र के द्वारा यह बताया गया था कि बंगलादेश में जो कुछ हुआ वह भारत में होने वाली सम्भावना का रिहर्सल भर था। और अब यह निर्णीत वास्तविकता थी। सरकार के पागलपन में एक व्यवस्था दिखती है। इन्दिरा-कांग्रेस की कस्तूरबा-नगर, गोविन्द पुरी और जबलपुर की हार से वह

पूरी तरह से घबरायी हुई है । पूरे देश में जे० पी० के आन्दोलन को जो उत्कट जन समर्थन प्राप्त हुआ है उससे सरकार की जड़ें हिल गयी हैं । विरोधियों के प्रति निर्मम कृत्यों के द्वारा इन्दिरा-कांग्रेस जन आन्दोलन को उखाड़ फेंकना चाहती है तथा आगामी दो महीनों में होने वाले चुनाव के लिए वह लोगों को भयभीत कर देना चाहती है ।

केरल के ढंग पर केन्द्र और अन्य राज्यों में सत्ता के लोलुप कम्युनिस्ट काफी सक्रिय थे । इनके धर्म-पिता, रूसी, चाहते हैं कि इन्दिरा कांग्रेस सी० पी० आई० का सहयोग लेकर जन-आन्दोलन को कुचल दे ।

कामरेड बरुआ का कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में अभिषिक्त होना इस दिशा में एक कदम था । राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ और जे० पी० के जन आन्दोलन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा अन्धकार भरी दिशा में उठाया गया एक बड़ा कदम था।

कामरेड राजेश्वर राव ने 'गृह-युद्ध' की धमकी दी थी और अब इन्दिरा सरकार ने इसका निर्णय ले लिया था ।

जब कई दिन बीत गये और कुछ नहीं घटा तो कई लोगों ने सोचा कि मैं "भेड़िया आया", "भेड़िया आया," चिल्ला रहा था । फरवरी १९७५ में दिल्ली जनसंघ के कुछ सभासदों को पैसे का लालच देकर तथा कुछ को खून-खच्चर की धमकी देकर या फिर आफतें ढहा देने का भय दिखाकर प्रशासक दल के द्वारा भ्रष्ट करने की कोशिश की गयी ।

२५ जून दोपहर में एक अपरिचित व्यक्ति ने मेरे यहाँ आकर नयी दिल्ली कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी के रूप में अपना परिचय दिया । वह महाशय काग्रेसी से अधिक सी० आई० डी० के आदमी लग रहे थे । उन्होंने पूछा कि क्या मुझे पता था कि पिछली रात को 'मार्शल-ला' की घोषणा होने वाली थी ? मैंने कहा, "हाँ, मैंने कुछ ऐसा सुना था ।" अपने एक घण्टे के वार्तालाप में उन्होंने मुझे एक नहीं; दो नहीं बल्कि तीन बार यह कहा कि मैं उन्हें प्रधानमन्त्री के नाम चाहूँ तो एक मुहरबन्द पत्र दे सकता हूँ जिसे वह स्वयं प्रधानमन्त्री को दे देंगे । मैंने कहा कि मुझे उन्हें कुछ नहीं कहना है । बहरहाल जब उन्होंने बहुत आग्रह किया तो मैंने कहा कि यदि वह अपना विशेष इन्टरव्यू देने को तैयार हों तो मैं प्रसन्नता के साथ औपचारिक निवेदन कर सकता हूँ । स्पष्ट था कि सरकार यह देख रही थी कि उसकी धमकियों के सामने कौन भय और पैसे घुटने टेकता है ?

आपात्काल की घोषणा के कुछ दिन पहले एक वरिष्ठ नेता को, जो कि रोहतक जेल में बन्द थे, प्रधानमन्त्री से मिलने के लिए बुलाया गया । देवी जी ने

उनसे सहायता करने को कहा ताकि वह भी मिस्री राष्ट्रपति नसर कि भाँति शक्ति अर्जित कर देश का निर्माण कर सकें ।

वरिष्ठ नेता ने जवाब दिया, "देश को निर्माण करने के लिए आवश्यक सारी शक्तियाँ आपके पास पहले से ही हैं ।"

इस पर वह बोली कि उन्हे और शक्ति की आवश्यकता है और वह विरोधी दलो कि किसी मूर्खता को सहन नही करेगी ।

मिलने आये हुए नेता ने क्षमा माँगते हुए असमर्थता प्रकट की । जैसे ही वह सज्जन बाहर आ रहे थे कि श्री हक्सर ने उनसे कहा कि यदि प्रधानमन्त्री के नये अनुष्ठान मे उनके जैसे लोग सहयोग नही देंगे तो सारी योजना ही व्यर्थ हो जाएगी और "सम्भव है कि कुछ मुसीबत खडी हो ।"

ऐसे लोगों का एक पूरा हुजूम था ।

इमरजेन्सी की घोषणा के कुछ दिन बाद नेहरू-परिवार से सम्बन्धित एक निकट का व्यक्ति तीन विभिन्न अवसरो पर सुन्दरी से मिला । वह चाहता था कि सुन्दरी प्रधानमन्त्री से मिले, जाहिर था मेरे लिए । उस व्यक्ति ने कहा कि १४ जून १९७५ के अपने सम्पादकीय में जो पुराण-पन्थी उपदेश—"स्त्री, दफा हो, फिर कोई पापाचार नही" दिया गया है उससे मेडम बहुत दुःखी है । लेकिन सुन्दरी ने दृढता के साथ मिलने से अस्वीकार कर दिया, "मुझे उनसे कोई काम नही ।"

✱ ✱ ✱

३

• परीकथाओं से भी अधिक विचित्र

मैं समझता हूँ कि २५-२६ जून को पकड़े गये लोगों में मैं पहला व्यक्ति था। और जब चुनाव समाप्त हो गये तथा इमरजेन्सी उठा ली गयी तभी मैं मुक्त किया गया। २६ जून को रात में दो बजे प्रधान-मन्त्री के आवास से दिल्ली के एक पुलिस अधिकारी को यह जानने के लिए फोन किया गया कि मैं गिरफ्तार कर लिया गया कि नही ताकि वह आश्वस्त हो सकें। चूंकि राजेन्द्रनगर के छोटे पुलिस थाने मे मैं था इसलिए आई० जी० पी० निश्चयपूर्वक कुछ नही बता सके। प्रधानमंत्री ने अपना आक्रोश व्यक्त किया, क्योंकि यह सम्भावना हो सकती थी कि कहीं मैं पुलिस के चंगुल से भाग न निकलूं।

जिसके पास शस्त्र के नाम पर सिर्फ कलम हो ऐसे व्यक्ति से क्यों इतना विद्वेष था ?

मैं समझता हूँ कि यह विरोध को न सहना, के अलावा भी कुछ था। यह वह आघात था जो कि सत्य के उद्घोष को सुनकर होता है। और यह सत्य उस *'डेढ़ सरकार' के बारे में था जिसे बाबू जगजीवनराम ने बड़े ही बिम्बात्मक ढंग* से प्रस्तुत किया था और जो कि परीकथाओं से भी अधिक विचित्र था।

'द मदरलैण्ड' ने शुरू से ही सरकार के गंदे पैरों का भण्डाफोड किया था। बल्कि 'द मदरलैण्ड' के पहले 'आरगेनाइजर' ने भी यही काम निबाहा था। जब नागरवाला-काण्ड घटित हुआ तब हमने किसी दूसरे से अधिक उस काण्ड की बखिया उधेड़ी थी। उस समय जबकि दूसरे 'मारुति' पर चढने की सोच रहे थे तो हमने ही कहा था कि यह वह कार है जो कभी भी सड़क पर नही दिखलायी देगी। बहरहाल इमरजेन्सी के एक वर्ष पूर्व लोगों ने एक नहीं, दो नही बल्कि खाँचियों भर काण्ड देखे।

५ जून को पटना में जे० पी० जुलूस पर इन्दिरा-ब्रिगेड ने गोलियाँ चलायी। दो दिन बाद ही हमने छापा कि यह एक षड्यन्त्र हो सकता है :

कांग्रेस की पिछली कार्यकारिणी समिति के अवसर पर, व्यवस्था देने के लिए, एक अग्रज सदस्य ने रिमार्क किया कि जे० पी० से निबटने के लिए पार्टी को सावधानी बरतनी चाहिये ।

इस पर एक केन्द्रीय मन्त्री ने पूछा, जे० पी० ? कौन है यह ? इसे तो मिनटों में साफ किया जा सकता है।"

एक अन्य मुख्य-मन्त्री बोले, "अरे सौ आदमियों को गोली से उड़ा दो और जे० पी० उनमें से एक होगा, और फिर सब ठीक हो जाएगा।"

चौथे सदस्य ने कहा, "अगर जे० पी० को गोली लगी तो इतनी प्रतिक्रिया होगी कि हमें दो करोड़ लोगों पर गोलियाँ चलानी पड़ेंगी।"

प्रधान-मन्त्री उक्त अवसर पर मौजूद थी और सुनती रही थीं पर एक शब्द भी नहीं बोलीं। ऐसा लगा कि उन्हें मजा आ रहा था क्योंकि वह मुस्कराती रही थीं।

१२ जून को 'जयप्रकाश की हत्या की योजना' शीर्षक से हमने लिखा। इस लेख में बताया गया कि बिहार के कुछ कांग्रेसी नेताओं ने जे० पी० से पिण्ड छुड़ाने के लिए तय कर रखा था कि राज्य विधान-सभा भंग कराने के लिए ५ जून को जे० पी० जिस विशाल जनसमूह का नेतृत्व करने वाले थे, उस समय उक्त कार्यवाही की जाए। यह विश्वास किया जाता था कि इस षड्यन्त्र की तैयारी एक ऐसे कांग्रेसी नेता के घर पर की गयी थी जो शासक दल के बहुत निकट माने जाते थे।

लेकिन जे० पी० की हत्या की सारी योजना जुलूस के मार्ग बदल दिये जाने से धरी की धरी रह गयी। ऐसा कहा जाता है कि पुलिस को इसकी कुछ हवा लगी और उन्होंने जे० पी० से जुलूस के मार्ग के बारे में विचार-विमर्श किया। षड्यन्त्र के बारे में बिना कुछ बताए पुलिस, सर्वोदयी-नेता को मार्ग बदल देने के लिए राजी कर सकी थी।

१३ जून १९७४ को "इन्दिरा-ब्रिगेड की रहस्यमय गाथा" शीर्षक से प्रकाशित किया गया। दूसरी बातों के अलावा इन्दिरा-ब्रिगेड के चेयरमेन मुशीर अहमद खान का वक्तव्य भी था कि ब्रिगेड की शाखाएँ छह राज्यों में नहीं बल्कि चौदह राज्यो में हैं, जैसा कि ब्रिगेड के नेशनल कमाडेन्ट का दावा है। मुशीर अहमद भूतपूर्व इन्दिरा-कांग्रेसी सांसद हैं तथा उ० प्र० के एटा जिले के हैं और भारत

सरकार के प्रतिष्ठान माडर्न बेकरीज के चेयरमैन हैं तथा साउथ एक्सटेन्शन नयी दिल्ली वाला उनका आवास ब्रिगेड का मुख्य कार्यालय भी है। वक्तव्य में कहा गया कि, "ब्रिगेड की बिहार शाखा अनाधिकारिक नहीं थी। दो वर्ष पूर्व लेडी स्टीफस हॉल में इसका श्रीगणेश किया गया था। इसके उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता बिहार के तत्कालीन मुख्य मन्त्री केदार पाण्डे ने की थी। वर्तमान मुख्य-मंत्री श्री गफ़ूर खां उपस्थित थे। इसका उद्घाटन प्रधान-मन्त्री के दांये हाथ श्री ललित नारायण मिश्र ने किया था।" ब्रिगेड के लोग दिल्ली के १९७२ और ७३ के ए० आई० सी० सी० के अधिवेशनों में उपस्थित थे तथा वहाँ निःशुल्क पर्चेबाजी कर उन्होंने अपनी उपस्थिति सिद्ध की थी। रिपोर्ट में यह भी कहा गया :

गत सप्ताहों में बिहार सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने सात लाख और तीन लाख रुपये क्रमशः निकाले। यह राशि इन्टेलीजेन्स के नाम पर निकलवायी गयी थी। बहरहाल दस लाख की यह सम्पूर्ण राशि बिहार के इन्दिरा-ब्रिगेड को दी गयी...।

विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि इन्दिरा-ब्रिगेड को आर्थिक सहायता कांग्रेस से मिलती है। बाद में आर्थिक सहायता की जिम्मेदारी गन्ने के एक उद्योगपति श्री कुलदीप नारंग ने अपने सिर ओढ़ी जो कि संजय गांधी के निकट के मित्र थे।

बहरहाल गतवर्ष इन्दिरा-ब्रिगेड को अनधिकृत रूप से उस 'रॉ' ने रहस्यात्मक तरीके से अपने अधिकार में कर लिया जिसकी अध्यक्षता मंत्रीमण्डलीय सचिवालय की रहस्यमूर्ति श्री कॉव करते हैं, जो कि प्रधान मन्त्री के प्रमुख निजी सचिव के मातहत हैं।

अतः इन्दिरा-ब्रिगेड केवल नाम से ही इन्दिरा नहीं था बल्कि वास्तविक भी था। शायद इसीलिए ५ जून को जो कुछ हुआ उसको लेकर प्रधान-मंत्री ने न तो उससे अपने को असम्बन्धित ही बताया और न ही उसकी भर्त्सना की।

अब आयी श्री ललित नारायण की रहस्यमयी हत्या। ४ जनवरी के लेख "किसने मिश्र की हत्या की" मे हमने इस पर बल दिया कि इस अपराध के क्यों और कैसे के बारे में अनेक मत हैं परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह सारी योजना सुसम्बद्ध थी तथा निष्णात व्यक्ति द्वारा कार्यान्वित भी हुई। गुप्तचर सूत्रों से ज्ञात हुआ कि वी० आई० पी० आयोजनों पर मंच और उसके आस-पास का क्षेत्र अनधिकारी व्यक्तियों के लिए २४ घण्टे पूर्व ही 'पहुँच से परे' कर दिया जाता है। इसलिए सुरक्षा के प्रबन्ध से सम्बन्धित व्यक्ति ही उस टाइम-बम को वहाँ रोप सकता था और मंच उड़ा सकता था।

पीड़ित रेल कर्मचारियों या नक्सलाइट लोगों के हाथ होने की सम्भावना के साथ यह भी कहा गया कि हमे डर है, जैसा कि कुछ अनुभव करते हैं, '...

द्वारा सरकार' का ही यह भी एक मामला है। श्री मिश्र, सरकार के लिए असुविधा बन चले थे। उनका त्यागपत्र (जिसको स्वीकार कर लेने पर सरकार के दोष की संपुष्टि होती) एक खुली गोपनीयता थी। उस पर यह भी सम्भव था कि आहत मिश्र सम्पूर्ण सत्य ही उगलने लगते, जिसमें और भी अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति लपेट में आते, जो कि मिश्र से भी अधिक दोषी होते। उस समय मिश्र की समाप्ति का अर्थ होता सरकार का लाभ। मिश्र ने अपने मित्रों से कहा था, "यदि मुझे जाना पड़ा तो मेरे साथ बहुतों को जाना पड़ेगा।" जाहिर है कि उनके कुकृत्यों मे दूसरों का भी सहयोग है, इसके प्रमाण उनके पास थे। उस पर यह कितना रहस्यात्मक तथ्य था कि बम फेंकने वाला मार डाला गया। इससे मुझे कैनेडी और लियाकत अली के हत्यारों की नियति याद आयी। १३ जनवरी के 'द मदर-लैण्ड' में यह उद्घाटित किया गया कि श्री मिश्र ने तीन लाख का अपना बीमा करवा रखा था तथा उस पालिसी मे हत्या से मृत्यु का 'रिस्क' भी शामिल था। और आश्चर्य तो यह कि उसकी किस्तें कौन जमा कर रहा था क्योंकि एक मंत्री के मासिक वेतन के बराबर तो उसकी किस्तें थी।

१६ जनवरी को पत्र में 'रहस्यमय रामबिलास झा' की मिश्र जी की मृत्यु के पूर्व तथा बाद की रहस्यमय गतिविधियों के बारे मे प्रकाशित किया गया।

जनसंघ कार्यकारिणी के लिये जनवरी के चौथे सप्ताह मे अहमदाबाद के रास्ते मे संयोग से समस्तिपुर के रेलवे के डाक्टर मल्ला से मेरी भेंट हो गयी, जिन्होंने कि विस्फोट के बाद श्री मिश्र की शुश्रूषा की थी। जो कुछ वह जानते थे उन्होंने बतलाया लेकिन उन्होने प्रार्थना की कि उनके नाम का उल्लेख न किया जाए क्योंकि उनके विरुद्ध एक विभागीय जाँच चल रही थी। २३ जनवरी वाले लेख मे उनका उल्लेख तृतीय पुरुष के रूप मे किया गया है। दूसरी बातो के अलावा डाक्टर ने बतलाया कि मन्त्री महोदय समस्तिपुर तत्काल छोड़ना चाहते थे। वह आश्वस्त थे कि चूँकि पहले बम विस्फोट मे वह बच गये हैं इसलिये यदि वह जल्दी नही लौटते तो उन्हे मार डालने के लिये दुबारा प्रयास किया जाएगा। उनकी आशका सही थी। दूसरा बम रेलवे-मेडिकल-अस्पताल के पड़ोस वाले मकान में पाया गया था। अवश्य ही उनकी हत्या के लिए दुबारा प्रयत्न की चेष्टा मे कोई इस ताक मे था कि यदि वह अस्पताल जाते हैं तो वह चूके नही। जब मिश्र वहाँ नही गये तो हत्यारा बम को यों ही फेंक कर चला गया, जिसे बाद मे रेलवे के एकाउन्टेण्ट के पुत्र ने उठाया था।

कुछ दिनों बाद मिश्र-परिवार के एक सदस्य से भेंट हुई। उनसे जो बातें हुई उससे शक की संपुष्टि हुई कि यह एकदम ही राजनीतिक हत्या का एक मामला था

उन्होंने मुजफ्फरपुर ज़िले के औघड स्थान के रहस्यमय मस्ताना बाबा का भी ज़िक्र किया। बाबा से यह अपेक्षा थी कि वह मिश्र जी के लिये जप आदि कर रहे हैं लेकिन जब वह विस्फोट में घायल हुए तो बाबा ने राम बिलासक्षा से कहा "यह साला अब नही बचेगा।" बाद में बाबा का पता नहीं चला। हमने तब लिखा : "क्या यह सच है कि मस्ताना बाबा दिल्ली में हैं ? क्या यह सच है कि उसे गैरकानूनी ढंग से रोक रखा गया है ? क्या यह भी सच है कि उसे सहसा कोई रहस्यमय रोग हो गया है ?

यह कहाँ तक सच है कि उसे भय है कि वह जल्दी मर जाएगा ? उसकी चमडी कोढियों जैसी क्यों फटने लगी है ? क्या उसे विष देकर धीरे-धीरे मार डाला जा रहा है ? यदि हाँ, तो किसके द्वारा ?

सरकार ने सी० बी० आई०, एक मेडिकल टीम तथा एक न्यायिक जाँच कमीशन मिश्र की रहस्यमय मृत्यु के सम्बंध में मनोनीत किया है।

परन्तु सरकार यदि मस्ताना बाबा को प्रस्तुत कर सके तो देश इस रहस्य के बारे में बहुत कुछ जान सकेगा . . .।

इन समाचारों मे से किसी का भी खण्डन नही किया गया, यद्यपि आये दिन इनके कारण राजधानी में तहलका मचता रहा।

और तब 'समाचार' आया एक 'पिस्तौलधारी' का, जिस समय कि इलाहाबाद उच्च-न्यायालय मे श्रीमती गांधी गवाही देने गयी थी। २७ मार्च, १७ अप्रैल और २ मई के हमारे समाचारों से यह बात पुष्ट और स्पष्ट होती है कि यह सब धोखाधड़ी वैसी ही थी कि जिसकी तुलना मार्च १६७७ के संजय के चुनाव मे हुई 'गोलीबारी' से की जा सकती है।

मार्च १६७५ में संजय की मारुति के 'महान् स्केण्डल' पर हमने छह लेखों की एक माला प्रकाशित की। जिस मारुति लिमिटेड में सजय ने केवल १०० रुपये लगाये थे उसे लाखों का घाटा हो रहा था। 'मारुति टेकनीकल सर्विसेज' जैसी सजय की जेबी सस्थाओं को मारुति लिमिटेड से लाखों की फीस मिल रही थी जबकि उसकी यंत्रीय क्षमता केवल १२०० रुपयों की थी। हमने बताया कि यह महान् घोटाला तो 'मूंदड़ा काण्ड से भी बदतर' है। खबरों ने स्पष्ट किया कि 'मावी मशीनरी' के नाम पर सेन्ट्रल बैंक ने मारुति को १० लाख का ऋण दिया तथा पंजाब नेशनल बैंक का १ करोड़ के ऋण का भगवान् ही मालिक था।

मारुति ने विश्वास दिलाया था कि १ अक्तूबर १६७३ तक १०,००० कारें निर्मित हो जाएँगी। इसके आधार पर तथा बाद की घोषणाओं के आधार पर सेल्स-एजेन्सी के लिए २.२ करोड़ रुपये जमा किये गये। बेचारे विक्रेताओं को कार

तो नहीं हीं मिली पर न तो उन्हें पैसा ही वापस मिला और न उन्हें अपनी इस 'जमा' पर सूद। जब उड़ीसा के एक विक्रेता दीनानाथ ने अपना पैसा वापस चाहा तब उसे मीसा के अन्तर्गत धर लिया गया। इन सारे समाचारों से ज्ञात होता है कि इस महान् नवयुवक के पास सन् १९७० तक कोई जायदाद नहीं थी परन्तु अब करोड़ों की हो गयी थी। उसे कार का लाइसेन्स उस समय दिया गया जबकि राज्य सरकारों को भी उसके लिए मना कर दिया गया था। इस महान् नवयुवक ने मारुति में केवल १०० रुपये लगाये थे परन्तु वह कम्पनी का 'स्थायी' मैनेजिंग डाइरेक्टर था। बंसीलाल ने किसानों से बड़ी ही निर्ममता एवं छल-कपट करके खेती के लिए ४०० एकड़ की बढ़िया भूमि बाजार दर के दसवें मूल्य पर संजय को दिलवायी। कम्पनी को यद्यपि भारी हानि हो रही थी परन्तु किन्हीं अतिरिक्त एवं अज्ञात कारणों के फलस्वरूप बड़े उद्योगपतियों द्वारा इसके शेयर खरीदे जा रहे थे। इस बीच सोनिया और उसके बच्चे शेयरों के बड़े भागीदार बन गये, परन्तु यह पता न चल सका कि सहसा इतना धन कहाँ से फट पड़ा।

सरकार ने जब जामा-मस्जिद के प्रदर्शनकारियों पर गोलीबारी की तब हमने (४, ५, ६, ७, ८ फरवरी १९७५) सूचित किया था कि किस प्रकार पुलिस गलत थी और इमाम सही थे। जामा-मस्जिद के प्रश्न को लेकर जब हिन्दू और मुसलमान एक दिखलायी दिये तो सरकार को इस एकता से उलझन हुई परन्तु वह कर ही क्या सकती थी? फरवरी १९७५ में हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो बीजारोपण किया गया था वहीं १९७७ में मुसलमानों द्वारा जनता पार्टी के समर्थन के रूप में प्रतिफलित हुआ।

१६ अप्रैल को हमने उद्घाटित किया कि जासूसी पर सरकार १०० करोड़ रुपये खर्च करती है। सच तो यह है हमारी इन खबरों को लेकर न तो कभी मुकदमा चलाया गया और न हीं प्रेस-कौंसिल के सामने ले जाया गया। इससे पता चलता है कि हमारी बात सत्य थी।

भगवान् बुद्ध ने कहा है कि मित्र सावधान करता है जबकि शत्रु आक्रमण। हमारे मैत्रीपूर्ण परामर्श के आधार पर सुधार करने के स्थान पर सरकार ने हमें शत्रु मानकर हमें डराने के लिए आक्रमण आरम्भ कर दिया। लेकिन कलम, तलवार से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई।

फिल्म 'आंधी' को लेकर एक दिलचस्प विवाद के साथ अप्रैल का महीना बीता। १३ अप्रैल को हमने बताया कि 'आंधी' फिल्म इन्दिरा जी के जीवन और प्रेम पर आधारित है। तीन दिन बाद उनके सूचना सलाहकार ने इस

समाचार का खण्डन किया। अतः 'आँधी' प्रधान-मंत्री और 'मदरलैण्ड'—शीर्षक से हमारे फिल्म समीक्षक ने लेख लिखा जिसमें खण्डनवाली टिप्पणी भी शामिल थी।

१६ अप्रैल के पत्र संख्या पी० एम० एस० ५८८६ के अपने पत्र में प्रधान-मंत्री के सूचना सलाहकार श्री एच० वाई० शारदा प्रसाद ने 'द मदरलैण्ड' के सम्पादक को लिखा :

प्रिय महोदय,

१२ अप्रैल १९७५ के 'मदरलैण्ड' में एक फिल्म, जो कि इन दिनों यहाँ प्रदर्शित की जा रही है, के सन्दर्भ में लिखते हुए जिस प्रकार प्रधान-मंत्री को लपेटा गया है उससे घोर आश्चर्य हुआ।

आपका कहना है कि इसके लेखक कमलेश्वर ने प्रधान-मंत्री से पूर्व स्वीकृति ले रखी थी।

यह सर्वथा झूठ है।

आपका कहना है कि २६ मार्च को राष्ट्रपति-भवन मे स्वयं प्रधान-मंत्री इस फिल्म को देख चुकी हैं।

यह सही नही है। प्रधान-मंत्री ने यह फिल्म नही देखी बल्कि वास्तविकता तो यह है कि २६ मार्च को राष्ट्रपति-भवन मे उन्होंने कोई फिल्म नही देखी।

आप कहते हैं कि इस फिल्म की नायिका में और प्रधान-मंत्री में एक प्रकार की समानान्तरता दिखलायी देती है। आप विश्वास कर सकेंगे कि आप कुछ भी विश्वास कर सकते हैं।

वर्तमान इतिहास से जिसका जरा भी परिचय होगा उसे इन्दिरा गांधी के जीवन के साथ फिल्म की नायिका की जीवन-गाथा मे कोई साम्यता नही दिखलायी देगी। न तो मूलभूत कथा और न ही परिवेशगत बारीकियों, किसी में भी तो समानता नही है। यदि नायिका बालों में भूरी पट्टियाँ बाँधती हैं या चुनाव में भाग लेती है तो इन बातो से कोई समानता स्थापित नही होती। इस समाचार के लिए आपने जो शीर्षक चुना उससे स्पष्ट है कि आपको जरा सा भी आधार मिल जाए आप प्रधान-मंत्री पर दोषारोपण करने में नही चूक सकते।

आपका

हस्ताक्षरित/एच० वाई० शारदा प्रसाद

प्रधान-मंत्री के सचिवालय के द्वारा हमें पत्र भेजना, आश्चर्यजनक था। प्रधान-मंत्री ने आया उक्त फिल्म देखी और पास किया या नहीं, यह जरा भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। हम यहाँ ११ अप्रैल को उर्दू की एक फिल्म पत्रिका 'चित्रा' की उस टिप्पणी को उद्धृत करना चाहेंगे जो कि बाक्स में दी गयी थी :

> *"इन्दिरा गांधी ने सुचित्रा सेन के अभिनय की भी प्रशंसा की। नयी दिल्ली के राष्ट्रपति-भवन में २६ मार्च को निर्माता ओम प्रकाश की फिल्म 'आँधी' श्रीमती गांधी ने देखी। फिल्म देखने के बाद उन्होंने कहा कि सुचित्रा सेन ने अच्छा अभिनय किया है।"*
> सम्पादक बी० पी० पुरी से जब फोन पर पूछा गया कि यह खबर उन्हें कैसे उपलब्ध हुई तो वह बोले : मैं इसे शेर (नी) की माँद से निकाल कर लाया हूँ...

इस बारे में 'नेशनल हेराल्ड' या 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में के० एम० अमलादी की टिप्पणी या इण्डियन-एक्सप्रेस में देवू मजूमदार आदि ने क्या कहा इसकी चर्चा ही बेकार है और 'ब्लिट्ज' का तो कहना ही क्या !

सन् १९७५ के जून के महीने ने प्रधान-मंत्री के भण्डाफोड़ का सबसे बड़ा काण्ड देखा। इलाहाबाद उच्च-न्यायालय के फैसले के दूसरे ही दिन पहले पृष्ठ पर सम्पादकीय में हमने साफ-साफ माँग की कि प्रधान-मंत्री को त्यागपत्र दे देना चाहिए। जब देवी जी ने अपने जाने के कोई आसार नहीं दिखाये तो हमने १४ जून के सम्पादकीय में लिखा :

श्रीमती इन्दिरा गांधी, जिन्हें अब प्रधान-मंत्री कहने की कोई आवश्यकता नहीं है—इस सप्ताह मैक्सिको जानेवाली थीं लेकिन उच्च-न्यायालय के फैसले ने उसे बेमूद कर दिया। वह भाड़े की जमा भीड़ को सम्बोधित कर सकती हैं परन्तु वह जब तक त्यागपत्र नहीं देती तब तक विदेश में वह मुँह नहीं दिखला सकती। हालाँकि वह कपड़े-लत्तों से पूरी तरह लैस हैं—परन्तु जाना कहीं नहीं है।

लगता है देवी जी तय नहीं कर पा रही हैं कि वह जाएँ या रहें? शायद उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो कहे : "क्या तुम जा नहीं सकती?" तुम्हारा ठहरना क्या जरूरी है?"

इस सन्दर्भ में हमें चार्ल्स जॉन वॉगन की याद आती है जो कि प्रायः यह कह कर स्कूली लड़कों को नाश्ते पर से जबरन उठा देने के लिए बाध्य होते थे क्योंकि उन्हें जाने में संकोच लगता था। "क्या तुम जाओगे ही? रुक नहीं सकते?"

यह राजस्थानी 'विराजिए' कहने जैसा ही है, जिसका संदर्भ विदा से है। गुजराती भी विदा करते हुए 'आवजो' कहते है।

शेक्सपियर ने देवी जी को निश्चित ही परामर्श दिया होता,

"अपने जाने के क्रम का रास्ता न रोको
बल्कि तुरन्त चली जाओ।"

इसलिए कि, हाउसमन के शब्दों में, "ओह, जाओ, जहाँ तुम्हारी कामना की जा रही है क्योंकि कहीं भी तुम्हारी कामना नही की जा रही है।"

स्टेर्न ने तो और भी खुल्लमखुल्ला कहा होता : "जा, दईमार शैतान, जाती क्यो नही।"

और रावर्ट ब्राउनिंग ने उन्हें सलाह दी होती, "न बैठो, न खड़ी रहो, बस जाओ।"

और निश्चय ही बाइबिल इस विषय में अन्तिम आदेश देती।" जाओ और भविष्य में कोई पाप न करना।"

शब्दो को चबा-चबाकर बोलने के स्थान पर हमने देवी जी के उस दावे का सीधा-सीधा खण्डन किया कि चूंकि टैक्निकल आधार पर ही उनका चुनाव रद्द *किया गया है अतः त्यागपत्र देना आवश्यक नही है क्योंकि कानून,* कानूनी बातो को छोड़कर नैतिकता या औचित्य जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नो से सम्बन्ध ही नही रखता। जबकि कैरों और अल केपो की ही तरह वह भी दोषी पायी गयी थी।

इसका यह तात्पर्य नही कि यशपाल कपूर और पुलिस दरोगाओं की सेवाओं के दुरुपयोग के लिए वह दोषी है। सारा देश जानता है कि सेना के विमान, सरकारी कर्मचारियों की कारों का कारवाँ, अफसरो का हुजूम और पुलिस के लाखों जवानों के कारण साफ-सुथरा चुनाव सम्भव ही नही। लोग इस बात को भी समझ चुके हैं कि गाय-बछड़े का चुनाव-चिह्न भी जनता की धार्मिक भावनाओं को उभाड़ने के लिए ही था। अतः देवी जी एक सौ एक गुनाहो के लिए जनता की नजरों मे अपराधी हैं। न्यायालय ने श्रीमती जी को केवल दो अपराधों में दोषी पाया क्योंकि बाकी सारे मुद्दों पर उपलब्ध प्रमाण कानून की दृष्टि में अन्तिम है। वास्तव मे तो उनका पाप वह अपार भीड़ है...

२० जून के अंक में हमने देवी जी पर कोर्ट की मानहानि करने का आरोप लगाते हुए बताया कि जिस कारण से 'स्टे' लिया गया उसके स्थान पर उसका उपयोग दूसरे ही उद्देश्य के लिए किया जा रहा है अतः राजधानी मे कानून-वर्ग के लोग इस हरकत से चकित हैं।

देवी जी ने अपने न जाने के जो कारण प्रस्तुत किये उनका जवाब दूसरे

प्रधान-मन्त्री के सचिवालय के द्वारा हमें पत्र भेजना, आश्चर्यजनक था। प्रधान-मन्त्री ने आया उक्त फिल्म देखी और पास किया या नहीं, यह जरा भी महत्वपूर्ण नहीं है। हम यहाँ ११ अप्रैल को उर्दू की एक फिल्म पत्रिका 'चित्रा' की उस टिप्पणी को उद्धृत करना चाहेंगे जो कि वाक्स में दी गयी थी :

> "इन्दिरा गांधी ने सुचित्रा सेन के अभिनय की भी प्रशंसा की। नयी दिल्ली के राष्ट्रपति-भवन में २६ मार्च को निर्माता ओम प्रकाश की फिल्म 'आँधी' श्रीमती गांधी ने देखी। फिल्म देखने के बाद उन्होंने कहा कि सुचित्रा सेन ने अच्छा अभिनय किया है।"
>
> सम्पादक वी० पी० पुरी से जब फोन पर पूछा गया कि यह खबर उन्हें कैसे उपलब्ध हुई तो वह बोले : मैं इसे शेर (नी) की मांद से निकाल कर लाया हूँ...

इस बारे में 'नेशनल हेराल्ड' या 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में के० एम० अमलादी की टिप्पणी या इण्डियन-एक्सप्रेस में देबू मजूमदार आदि ने क्या कहा इसकी चर्चा ही बेकार है और 'ब्लिट्ज' का तो कहना ही क्या!

सन् १९७५ के जून के महीने ने प्रधान-मंत्री के भण्डाफोड़ का सबसे बड़ा काण्ड देखा। इलाहाबाद उच्च-न्यायालय के फैसले के दूसरे ही दिन पहले पृष्ठ पर सम्पादकीय में हमने साफ-साफ मांग की कि प्रधान-मंत्री को त्यागपत्र दे देना चाहिए। जब देवी जी ने अपने जाने के कोई आसार नहीं दिखाये तो हमने १४ जून के सम्पादकीय में लिखा :

श्रीमती इन्दिरा गांधी, जिन्हें अब प्रधान-मन्त्री कहने की कोई आवश्यकता नहीं है—इस सप्ताह मैक्सिको जानेवाली थीं लेकिन उच्च-न्यायालय के फैसले ने उसे बेसूद कर दिया। वह भाड़े की जमा भीड़ को सम्बोधित कर सकती है परन्तु वह जब तक त्यागपत्र नहीं देतीं तब तक विदेश में वह मुँह नहीं दिखला सकतीं। हालाँकि वह कपड़े-लत्तों से पूरी तरह लैस हैं—परन्तु जाना कहीं नहीं है।

लगता है देवी जी तय नहीं कर पा रही हैं कि वह जाएँ या रहें? शायद उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो कहे : "क्या तुम जा नहीं सकती?" तुम्हारा ठहरना क्या जरूरी है?"

इस सन्दर्भ में हमें चार्ल्स जॉन वॉगन की याद आती है जो कि प्रायः यह कह कर स्कूली लड़कों को नाश्ते पर से जबरन उठा देने के लिए बाध्य होते थे क्योंकि उन्हें जाने में संकोच लगता था। "क्या तुम जाओगे ही? रुक नहीं सकते?"

यह राजस्थानी 'विराजिए' कहने जैसा ही है, जिसका संदर्भ विदा से है। गुंजराती भी विदा करते हुए 'आवजो' कहते है।

शेक्सपियर ने देवी जी को निश्चित ही परामर्श दिया होता,

"अपने जाने के क्रम का रास्ता न रोको

बल्कि तुरन्त चली जाओ।"

इसलिए कि, हाउसमन के शब्दों में, "ओह, जाओ, जहाँ तुम्हारी कामना की जा रही है क्योंकि कहीं भी तुम्हारी कामना नहीं की जा रही है।"

स्टेर्न ने तो और भी खुल्लमखुल्ला कहा होता : "जा, दईमार शैतान, जाती क्यों नही।"

और राबर्ट ब्राउनिंग ने उन्हे सलाह दी होती, "न बैठो, न खड़ी रहो, बस जाओ।"

और निश्चय ही बाइबिल इस विषय में अन्तिम आदेश देती।" जाओ और भविष्य मे कोई पाप न करना।"

शब्दों को चबा-चबाकर बोलने के स्थान पर हमने देवी जी के उस दावे का सीधा-सीधा खण्डन किया कि चूंकि टेक्निकल आधार पर ही उनका चुनाव रद्द किया गया है अतः त्यागपत्र देना आवश्यक नही है क्योंकि कानून, कानूनी बातों को छोड़कर नैतिकता या औचित्य जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से सम्बन्ध हो नही रखता। जबकि कैरों और अल कैपों की ही तरह वह भी दोषी पायी गयी थी।

इसका यह तात्पर्य नही कि यशपाल कपूर और पुलिस दरोगाओं की सेवाओं के दुरुपयोग के लिए वह दोषी है। सारा देश जानता है कि सेना के विमान, सरकारी कर्मचारियों की कारों का कारवाँ, अफसरों का हुजूम और पुलिस के लाखो जवानों के कारण साफ-सुथरा चुनाव सम्भव ही नही। लोग इस बात को भी समझ चुके है कि गाय-बछड़े का चुनाव-चिह्न भी जनता की धार्मिक भावनाओं को उभाड़ने के लिए ही था। अतः देवी जी एक सौ एक गुनाहों के लिए जनता की नजरों मे अपराधी हैं। न्यायालय ने श्रीमती जी को केवल दो अपराधो मे दोषी पाया क्योंकि बाकी सारे मुद्दो पर उपलब्ध प्रमाण कानून की दृष्टि मे अन्तिम है। वास्तव मे तो उनका पाप वह अपार भीड़ है...

२० जून के अंक में हमने देवी जी पर कोर्ट की मानहानि करने का आरोप लगाते हुए बताया कि जिस कारण से 'स्टे' लिया गया उसके स्थान पर उसका उपयोग दूसरे ही उद्देश्य के लिए किया जा रहा है अतः राजधानी मे कानून-वर्ग के लोग इस हरकत से चकित हैं।

देवी जी ने अपने न जाने के जो कारण प्रस्तुत किये उनका जवाब दूसरे

दिन के सम्पादकीय "बकवास की बादशाह" (नियागरा आफ नानसेन्स) में हमने दिया :

वोट-क्लब में देवी जी को सुनने पर हमें आश्चर्य हुआ कि कहीं इनका मानसिक सन्तुलन तो नही बिगड गया है ? इलाहाबाद के फैसले और फलस्वरूप विरोधी दलों द्वारा उनके त्यागपत्र की माँग को श्रीमती जी एक 'षड्यन्त्र' समझती हैं। आप फरमाती हैं कि कांग्रेस, किसान और मजदूरों की पार्टी है, जिसने कि संसद और बाहर सभी जगह विरोधी पार्टियों को काम करने दिया है। आपने बताया कि इस समय ससार मे भारत का सम्मान बहुत अधिक है। उन्होंने 'चरित्र-हनन' की भी शिकायत की तथा कहा कि उन्होंने कभी कोई गलत काम नही किया। वह बोली कि वर्तमान में शक्ति का जो ढाँचा विद्यमान है उसे कोई संकट नही है, परन्तु साथ ही यह भी कहा 'यदि यह शक्ति सन्तुलन परिवर्तित होता है तो साम्प्रदायिक हिंसा भड़क सकती है...'

देवी जी को खुशफहमी थी कि इस समय देश का सम्मान सर्वाधिक है। उनके पिता के समय से भी अधिक ? सम्मान के श्रेय को लूटने का सवाल हम इन पिता-पुत्री पर ही छोड़ते हैं, लेकिन लोगों की भावना कुछ भिन्न ही है कि वे 'महान्-वामन' लालबहादुर शास्त्री के समय सर्वाधिक सुखी थे।

देवी जी का 'विचार' है कि कांग्रेस, किसानों और मजदूरो की पार्टी है लेकिन श्रीमती जी ! लोग तो इसे चोरों, डाकुओं और खूनियों का गिरोह समझती है।

मैडम को 'चरित्र-हनन' की शिकायत है। क्या ही अच्छा होता कि वह इसकी चर्चा ही नही करती। नागरवाला-काण्ड और मारुति के घोटालों से सम्बन्धित महिला का क्या चरित्र हो सकता है ? देवी जी, जो चरित्र है ही नहीं उसका हनन कैसा ?

शक्ति के वर्तमान स्वरूप की चर्चा का अर्थ ही था कि सुप्रीम कोर्ट का भले ही कुछ फैसला हो, वह नही जा रही है। यह भी स्पष्ट हो उठा कि अपने बने रहने के लिए वह हिन्दू-मुस्लिम दगों को भड़काने से भी बाज नही आएँगी।

भावी पीढ़ियाँ, जो कि अभी जन्मी नहीं हैं; शर्म से अपना सिर झुका लेंगी कि एक ऐसी मूर्ख और खूंखार औरत हमारे देश की प्रधान-मन्त्री रही। वह औरत अपने देश की 'सेवा' और 'रक्षा' करना चाहती है। लोग केवल यही प्रार्थना कर सकते हैं कि "हे भगवान् ! हमें हमारे इन उद्धारकों से बचाओ।"

और अन्त मे, २७ जून के 'द मदरलैण्ड' का सम्पादकीय 'किसके लिए यह घण्टियो का सम्मोहन ?' (फार हूम द बेल टोल्स ?) अपनी आलोचना में कम कटु नही था :

आखिरकार श्रीमती गांधी ने लोगों के विरुद्ध युद्ध छेड़ ही दिया। अपने असन्तुलित प्रलापों से उन्होंने देश को लगभग चेतावनी दे दी है कि जहाँ तक कांग्रेस का सवाल है उससे विधि सम्मत शासन की आशा परीकथाओं की चीज है। अब देवी जी अपने सही रंग मे सामने आ चुकी थी और वही कर रही थी जिसकी चेतावनी हम बारम्बार देते आ रहे थे कि घिर जाने पर यह कानून को बालयेताक धर देगी, प्रेस का गला घोट देगी और संविधान को उठाकर रद्दी की टोकरी मे फेंक देगी।

स्वाधीनता के बाद यह पहली बार है जब कि देश मे विधि सम्मत सरकार नही है। इलाहाबाद और सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों के बाद इन्दिरा गांधी और उनके तथाकथित मत्री-मण्डल की हैसियत ताकतखोरों के गिरोह जैसी बद्तर हो गयी है जिन्हें अपने पद पर बने रहने का न नैतिक, न कानूनी कोई अधिकार नहीं है। आपात्काल की घोषणा और दूसरी कानूनी चालाकियाँ धोखे की वे टट्टियाँ हैं जिन सबकी वास्तविकता यही है कि राज्य पर खूँखार राजनीतिक दरिन्दों का कब्जा...

इन्दिरा गाधी की सबसे ताजा राक्षसी चालों के बारे में किसी को किसी प्रकार के धोखे में नही रहना चाहिए। वह अपने और अपने कूड़े परिवार के लिए हारी हुई लड़ाई लड़ रही हैं। १२ जून के प्रातः काल से ही, जिस दिन कि गर्हित साधनों के प्रयोग के लिए न्याय ने उनका चुनाव रद्द कर दिया, न तो श्रीमती गाँधी इस देश की प्रधान-मंत्री रही और न ही उनकी सरकार, विधि सम्मत सरकार ही रही। उनके लिये घंटियो का यह जादू, छल और सम्मोहन हमेशा रहा है और जब तक वह रहेगी तब तक प्रंपच का यह आकर्षण बराबर रहेगा।

✱ ✱ ✱

४

• ग्रहों की भविष्यवाणी

८ जुलाई की शाम के यही कोई छह का समय होगा, मैं केन्द्रीय कारागार के लान में अपने मित्रों से गप लड़ा रहा था तभी सुपरिन्टेन्डेन्ट ने मुझे एक तरफ बुलाया और कहा कि मेरी बदली कर दी गयी है।

"कहाँ ?"

"दिल्ली" वह बोला।

मुझे यह विश्वास करने में कठिनाई हो रही थी कि सबसे अलग, सिर्फ मेरी ही, वह भी अपने नगर में बदली की जा रही थी। मुझे शीघ्रता करने के लिए कहा गया और याद रखूं कि खाना अवश्य खा लूं।

यह बड़ा अजीब लगा। दिल्ली, दो घंटे से भी तो कम की दूरी है। तिहाड़ पहुँच कर मैं खाना क्यों नहीं खा सकता ? लेकिन सुपरिन्टेन्डेन्ट का आग्रह था कि जाने के पूर्व मैं खाना अवश्य खा लूँ। जैसे ही मैंने पूर्व-गोधूली खाना समाप्त किया कि एक अग्रज मित्र ने जे०पी० के नाम एक पुर्जा यह निवेदन करते हुए दिया कि वह श्रीमती जी के इस आरोप का खण्डन करें कि सेना को भड़काया जा रहा था। ख्याल यह था कि बजाय रोहतक के दिल्ली से चण्डीगढ़ में बैठे जे०पी० से सम्पर्क करना ज्यादा आसान है।

७ बजे के लगभग मैं ड्योढ़ी में था। यहाँ मुझे बताया गया कि दिल्ली पुलिस मेरी दिल्ली बदली के लिए आर्डर अवश्य लायी है लेकिन इन दिनों प्रायः यह होता है कि बदली किसी विशेष स्थान के लिए होते हुए भी कैदी को कहीं अन्यत्र ले जाया जाता है। और तत्काल ही आधे दर्जन सशस्त्र पुलिस से घिरे एक लारी में बैठालकर मुझे ड्योढ़ी से बाहर ले जाया जा रहा था। जाहिर था कि वे लोग आश्वस्त होना चाहते थे कि लोहे की जाली लगी लारी की खिड़कियों से कहीं मैं अपने को अन्तर्ध्यान तो नहीं कर लेता हूँ। वे सब

गुमसुम ही बने रहे और मैंने सूँघ लिया कि मैं इनसे एक भी शब्द न बोलूँ यही मुझसे वे अपेक्षा रखते है। जैसे ही गाड़ी पश्चिम को मुड़ी, मुझे लग गया कि हम दिल्ली नही जा रहे हैं। जब गाड़ी बराबर पश्चिम ओर ही बढ़ती रही तो मुझे लग गया कि हम अम्बाला भी नहीं जा रहे है। क्योंकि वह उत्तर में है। दो घंटे की यात्रा के बाद हम एक शहर के छोर पर रुके जहाँ हमें एक कार मिली। जब दोनों दलों में गपशप समाप्त हो गयी तब मुझे कार में ले जाया गया जिसमें कि सादे कपड़ों में पुलिसवाले आये थे। जिस समय कार का ड्राइवर अकेला था, मैंने उससे पूछा कि यह कौन-सा शहर है तो वह बोला कि वह भी नही जानता। स्पष्ट था कि वह भी एक पूर्ण प्रशिक्षित खुफिया था। जब मैंने जानना चाहा कि मेरा सामान कार में क्यों नही रखा गया तो विश्वास दिलाया गया कि वह पहुँच जाएगा। जो घट रहा था, बड़ा रहस्यात्मक था। मैंने अपने को एक छोटी फिएट गाडी में पाया जिसमें कि दोनों ओर दो लहीम-शहीम सज्जन मुझे लगभग चाँपे बैठे थे। कोई दस मील चलने के बाद हम एक बिल्डिंग के सामने जिस पर 'रेस्ट हाउस मेन' अंकित था। बाद में मालूम हुआ कि वह बड़ोपाल नहर विश्रामालय था। मुझे बताया गया कि अगर कैदी उद्दण्ड या अविनीत पाया जाए तो उसे कहा जाएगा कि उसे गोली मार दी जा सकती है और नहर मे यह कह कर फेंक दिया जा सकता है, "तुम पुलिस हिरासत से भाग जाना चाहते थे इसलिए गोली मार दी गयी।" लगभग इसी प्रकार से मुन्दर से भी पिण्ड छुड़ाया गया था।

जैसे ही भीतर प्रविष्ट हुआ तो मैंने टेबल और कुर्सियों के अलावा एक सुखद बिस्तर भी देखा। सोचने लगा कि एक रात बिताने के लिए बहुत अच्छी जगह है। एक वरिष्ठ सांसद रोहतक मे कहा करते थे, "यदि हमें गिरफ्तार ही करते हैं तो जिला-जेल की अपेक्षा किसी अच्छे विश्रामालय में रखना चाहिए।" मुझे लगा कि उनकी प्रार्थना सुन ली गयी। लेकिन मुझे आश्चर्य इसी बात का था कि मुझे अकेले को ही यह 'विशेष' व्यवहार क्यों मिल रहा है। जबकि गाड़ी मे बाकी सबके लिए भी तो काफी जगह थी ? मैं अपने सीधेपन मे यही सब सोचता रहा।

और तभी मैंने अपने को पाँच अन्य व्यक्तियो के साथ टेबल के गिर्द बैठा पाया। मेरी पड़ताल होनी थी। अब मेरी समझ में आया कि क्यों मुझे बार-बार खाना खा लेने के लिए कहा गया था। जैसे ही प्रश्न पूछे जाने लगे तो मैंने आपत्ति की : "मैं नही जानता कि आप कौन हैं, क्या हैं और पता नही मुझे रोक रखने का और इस प्रकार पूछने का आपको कोई अधिकार है भी

कि नही।" थोडी देर के लिए कमरे में शांति छा गयी। आखिरकार एक व्यक्ति, मेरा ख्याल था कि वह हिसार का सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट था, बोला : "मलकानी साहब ! हम आपसे सवाल करेंगे और आपसे हमें जवाब की आशा है।" दूसरे महाशय ने जोड़ते हुए कहा, "यदि आप सहयोग नही करेंगे तो हमें 'और तरीके' अपनाने होंगे।" मैंने उस असभ्य की ओर देखा तथा कहा कि वह सभ्य नही लगता और उसके किसी प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। उस समय से लेकर १.३० बजे रात तक, कोई चार घंटे तक उन लोगों ने समाचार पत्र के संगठन के बारे मे, पत्र की रीति-नीति के बारे मे, विशेष संवाददाताओं को लेकर, घुमन्तू संवाददाताओं को लेकर मारुति और मिश्र की हत्या के बारे में सैकड़ों प्रश्न किये। मुझे क्या कहना है ? मैंने सारे प्रश्नो के जवाब एक प्रेस-कान्फ्रेंस की भाँति दिये। यह स्पष्ट था कि ये सारी बातें टेप की जा रही थी क्योंकि इस दल का नायक हर आध घंटे के बाद बगल वाले कमरे में जाता था, जाहिर था कि वह मशीन की देख-भाल के लिए ही जाता होगा। आज उन टेपों को सुनना कितना दिलचस्प लगेगा ?

बहुत जल्द ही पता चल गया कि उनकी प्रमुख रुचि २६ जनवरी को जो भविष्यवाणी प्रकाशित हुई थी उसके बारे में थी जिसे अहमदाबाद के घुमन्तू संवाददाता ने भेजा था। उसका शीर्षक था : "१६७६ के आरम्भ में इन्दिरा पतन की भविष्यवाणी।" वह इस प्रकार थी :

अहमदाबाद, २६ जनवरी। हम एक अनिर्णीत स्थिति से गुजर रहे हैं। ऐसी दशा में ग्रह क्या भविष्यवाणी करते हैं, इसे जानने का लोभ सहज है। अत: पंडित 'वराहमिहिर' नामक एक प्रसिद्ध ज्योतिषी से, जो कि अज्ञात रहना चाहते हैं, हुई बातचीत इस प्रकार रही :

प्रश्न—कांग्रेस विभाजन के तत्काल बाद ज्योतिषी लोग बड़े ही खुले रूप में प्रधान-मन्त्री के पतन की घोषणा करते फिरते थे परन्तु वे भविष्यवाणियाँ तो सच नही निकली। क्या आप कुछ बता सकते हैं कि भूल क्या थी ?

उत्तर—एक सम्भावित जवाब तो यह हो सकता है कि ज्योतिषी लोगो की गणना गलत थी। फिर भी यह बड़ा अजीब है कि एक साथ सारे के सारे ज्योतिषी कैसे गलत हो गये ? दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि इन्दिरा जी की जो जन्मकुण्डली हम देखते रहे हैं, वह उनकी सही जन्मकुण्डली न हो। राजघरानों में पारिवारिक ज्योतिषी, जैसे राजगुरु लोग, जानते थे कि राज-सन्तानों की दुहरी जन्मकुण्डलियाँ तैयार की जाती थी—जिनमे से एक तो निजी व्यवहार के लिए दूसरे सार्वजनिक उपयोग के लिए।

प्रश्न—यदि इन्दिराजी की ज्ञात जन्मकुण्डली को लिया जाये तो आप कैसे उनके बारे में उत्तर देंगे ?

उत्तर—शासन के प्रमुख व्यक्ति के बारे में, देश के लिए ग्रहों की दशा के आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है। यदि जन्मकुण्डली सही है तो ज्योतिषी लोगों ने देश के सन्दर्भ मे देखने में भूल की।

प्रश्न—देश की हालत तो बदतर होती जा रही है, क्या बात है ?

उत्तर—सन् १९६९ से ही देश, 'साढ़े साती' के समान ही एक ऐसे ग्रह चक्र से गुजर रहा है, जो कि परीक्षाकाल है। यह समय १९७६ के मध्य में समाप्त होगा।

प्रश्न—क्या इस वर्ष आपको चुनाव की आशा है ?

उत्तर—नही। बहरहाल चुनाव में गड़बड़ियाँ, अराजकता और हिंसा होगी और चुनाव चाहे इस वर्ष हो या अगले वर्ष, कांग्रेस का बहुमत, यदि हुआ तो, बहुत ही स्वल्प होगा और इन्दिरा १९७६ के शुरू में सत्ताच्युत हो जाएँगी। शनि में कर्क के प्रवेश का यह २½ माह का समय ऐसा है जो दोनों पक्ष में है जिसमें इन्दिरा की राजनीति में परिवर्तन आएगा।

प्रश्न—चुनाव तो मार्च में होने है और यदि कांग्रेस की स्थिति गड़बड है तो इन्दिरा जी कैसे जून तक चलेंगी ?

उत्तर—मुझे नही लगता कि वह शांति से त्यागपत्र देगी। जैसे ही उनका बहुमत खतम होगा वह कुर्सी से चिपकी रहना चाहेंगी। कम्युनिस्टों की सहायता लेकर वह काम-चलाऊ इमरजेन्सी लागू करके देश में राजनीतिक लोगों की व्यापक गिरफ्तारियाँ करके तथा लोगो के नागरिक अधिकारों का अपहरण कर के अथवा सेना की सहायता करके वह ऐसा कर सकती हैं। वह अपने साथ देश को भी घसीटेंगी परन्तु जून १९७६ के बाद वह चली जाएँगी, ऐसा मुझे नहीं लगता। मैं उनकी नैसर्गिक मृत्यु भी नही देख रहा हूँ। सम्भव है कि उनकी मृत्यु रहस्यमय ढंग से हो। कांग्रेस में पुनः एक विभाजन सम्भव है। १९ नवम्बर १९७४ के पूर्ण चन्द्र-ग्रहण से ही शासक दल का एकदम पतन आरम्भ हो चुका है। कुछ दिन पहले तक वह जो कुछ करती रही वह कम-से-कम उनके लिए ठीक था परन्तु अब सब गड़बड़ाएगा। शनि, जलपुत्र कर्क में प्रविष्ट होने को है। 'बृहद् संहिता' में इस स्थिति के लिए कहा कहा है :

राजस्य भंगं नृपतेश्च भंग
क्षयो जनानाम बहुदुःख कारी॥

[राज्य भंग होगा, राजा का भी पतन होगा, लोगों का विनाश होगा और घोर कष्ट आएँगे।] यह राजकीय परिवर्तन की सूचना है कि इस ग्रहण के १८ मास के अन्दर राजनीतिक परिवर्तन अवश्यम्भावी है।

प्रश्न—यह राजकीय परिवर्तन क्या है, और कब आएगा ?

उत्तर—जून १९७६ से लेकर दिसम्बर १९७८ तक का समय देश मे अनेक उठा-पटक का युग होगा। किसी महापुरुष की सहसा मृत्यु होगी। सन् १९७८-७९ के जाड़ों से ही स्थितियाँ सन्तुलित होगी जिसमे कि देश मे स्थायी तथा देशभक्त सरकार की स्थापना होगी। चुनाव के बाद इन्दिरा जी के डिक्टेटर बनने के प्रयासों का प्रतिरोध १९७६ के जन-आन्दोलन के द्वारा होगा।

जब मुझे इस लेख के ये अश सुनाये गये तो अधिकाश भविष्यवाणी के सहीपन पर मैं चकित हो उठा। उदाहरण के लिए, जैसा इसमें कहा गया था कि "जब इन देवी जी की स्थिति डाँवाडोल होगी तब वह कुर्सी से चिपकी रहना चाहेगी और इसके लिए वह कम्युनिस्टो की सहायता से कामचलाऊ इमरजेन्सी लागू करेगी, देश मे व्यापक राजनीतिक गिरफ्तारियाँ होगी और लोगो की नागरिक स्वाधीनता दबा दी जाएगी।" कितना सच था! हालाँकि ज्योतिषी 'वराहमिहिर' आश्वस्त नही थे कि यह सब कब होगा। उनका ख्याल था मार्च १९७६ के चुनाव के बाद यह शुरू होगा। देश मे 'एक स्थायी देशभक्त सरकार की स्थापना' के पूर्व उन्होंने २१ माह का समय उत्पात का समय बताया था। दिलचस्प बात यह है कि इमरजेन्सी लगभग, उतने ही समय बनी रही, हालाँकि वह वराहमिहिर के अनुमान से नौ महीने पूर्व ही आयी भी और गयी भी। हमारे इन ज्योतिषी मित्र की गणना से श्रीमती जी की अप्राकृतिक मृत्यु है। ये खुफिया पड़तालो इस एक बात पर झूम पड़े कि यह बात ज्योतिषी की भविष्यवाणी में नही हो सकती है बल्कि मैंने इसे श्रीमती जी को समाप्त करने के ख्याल से एक षड्यन्त्र के रूप में छापा ताकि वातावरण बने। मुझे लगा कि यह एक गम्भीर आरोप है अतः मैंने स्पष्ट रुख अपनाया। अतः उनसे कहा, "यह समाचार स्वयं मैंने बम्बई के एक जनसंघी एम० एल० सी० डा० वसन्त कुमार पंडित को, जो कि स्वय प्रसिद्ध ज्योतिषी है और यशपाल कपूर के माध्यम से प्रधानमन्त्री ने भी उनसे परामर्श लिया है, राय से तैयार किया था।" मेरी इस बात ने उनके षड्यन्त्री गुब्बारे की हवा निकाल दी। बाद में उन्होंने न तो डा० वसन्तकुमार से पड़ताल ही की और न ही उन्हे गिरफ्तार किया जब तक कि नवम्बर १९७५ में स्वयं उन्होंने सत्याग्रह नही किया।

तब उन्होंने मुझसे पूछा कि मेरे इस लिखने का क्या तात्पर्य था कि दो वर्ष

मंशा मेरा अपमान करना नही बल्कि वे तो अपनी नौकरी बजा रहे हैं। मैंने उनसे कहा कि हम भी राजनीतिक नेताओं की सुरक्षा के बारे में वैसे ही संबंधित हैं जैसा कि कोई और। जब यह भविष्यवाणी प्रकाशित हुई थी, अधिकारी यदि चाहते तो उसी समय इसकी वास्तविकता को जाँचा जा सकता था। इसके लिए उन्हें छह महीने बाद जो आधी रात का नाटक खेलना पडा, उसकी आवश्यकता ही नही पडती। बाद मे मुझे बताया गया कि पूछताछ वाला व्यक्ति यदि जिद्दी पाया जाता है तो उसे गोली मारकर नहर में फेंक देने की धमकी दी जाती है और बताया जाता है कि यह कह दिया जाएगा कि "उसे गोली मार देनी पड़ी क्योंकि वह पुलिस की हिरासत से भाग रहा था।" संयोग से इसी प्रकार ही तो सुन्दर को खत्म किया था।

लगभग १.३० बजे फिर कार में सवार हुए। और जब थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा कि मैं हिसार की जिला-जेल के सामने हूँ तब मुझे पहली बार अनुभव हुआ कि हम हिसार के आसपास थे।

* * *

५

• दो अविस्मरणीय दिन

लगभग दो बजे रात में मैंने देखा कि मुझे 'मुखबिर-वार्ड' ले जाया जा रहा है। यह शब्द मुझे दुःखी और चकित कर गया। क्या यह कोई षड्यन्त्र है ? क्या मैं भी इस षड्यन्त्र का हिस्सा हूँ ? क्या मैं मुखबिर हो गया ? कँपा देने वाला था यह विचार। मुझे ले जाने वाले जेल अधिकारी से मैंने पूछा कि मुझे ऐसे वार्ड में क्यों ले जाया जा रहा है ? उसने बड़े ही टेढ़े ढंग से जवाब दिया : "इसलिए कि दूसरे सारे वार्ड बन्द हैं और सब सोये हुए हैं।" यह सुनकर कुछ आश्वस्त हुआ। लेकिन फिर भी चौकसी करते दारोगा के साथ अकेला मैं, उस अकेले वार्ड में बराबर असुविधा अनुभव करता रहा। मैंने अधिकारी से कहा कि मैं सवेरे पाँच बजे जगता हूँ, मुझे सवेरे सबसे पहले सामान्य मीसा-वार्ड में पहुँचाया जाए। वह जब सवेरे पाँच बजे लौटा तो मैं झपटकर बिस्तर से उठा, हालांकि मैं पूरे समय अर्धनिद्रित ही था। और मैं उसके साथ दूसरे वार्ड के लिए चला।

यह दूसरा वार्ड एक भिन्न दुनिया था। इसमें भयंकर अपराधी ही रखे जाते थे जिनके डंडाबेडी पड़ी रहती थी। जिन्हें डंडाबेडी नहीं पड़ी थी वे पागल थे। क्या मुझे भी डंडाबेडी में ही रखा जाएगा ? आश्चर्य हो रहा था। वास्तव में तो मैं यह सोचने भी लगा था कि डंडाबेड़ी में मैं कैसे बैठूँगा, खड़ा होऊँगा, सोऊँगा और चलूँगा। क्या इसी स्वाधीन भारत के लिए हम होम हुए थे ? क्या इन्दिरा द्वारा शासित भारत रहने के योग्य था ? आँखों में विगत स्मृतियाँ तैरने लगीं : सन् १९३०-३२ में हैदराबाद के केन्द्रीय कारागार के सामने घुड़सवारों के द्वारा आक्रमण, ९ अगस्त १९४२ को पूना में पुलिस की गोलियाँ; सन् १९४२ में गिरफ्तारी के वारंट के कारण पहले हैदराबाद से पूना और फिर पूना से वापस हैदराबाद और कराची।

मुझे बताया गया कि एक कोठरी जल्द ही साफ होकर मेरे लिए तैयार हो जाएगी। मैंने विरोध किया। इस पर अफसर ने क्षमा माँगते हुए कहा कि वह बीस मिनट में लौट आएगा। वह लौटा तीन घण्टे बाद। इस बार वह अपने वरिष्ठ के साथ था। इस बीच में बराबर नीम के पेड़ के नीचे बैठा-बैठा सिंधी के महान कवि शाह अब्दुल लतीफ को पढ़ता रहा। मैंने चूंकि दाँत साफ नहीं किये थे अतः चाय अस्वीकार कर दी। मैं अपने दाँत तब तक साफ करने को तैयार नहीं था जब तक कि मेरे रहने की समस्या नहीं सुलझती। वह वरिष्ठ जेल अधिकारी छल-कपट करने पर आ गया। उसने कहा कि मुझे मीसा बंदियों के साथ इसलिए नहीं रखा जा रहा है क्योंकि कोई अब है ही नहीं। "सब छोड़ दिये गये हैं।" और सच तो यह है कि मुझे इस वार्ड मे कुछ ही दिन तो रहना है—जब तक कि बोरस्टल जेल तैयार नहीं हो जाती। चूंकि बोरस्टल जेल तैयार हो चुकी थी अतः मैंने कहा कि मुझे वहाँ पहुँचा दिया जाए, भले ही पुताई आदि का रहा काम चलता रहे। लेकिन नहीं; कहा गया कि अभी पूरी तरह तैयार नहीं है। इस पर मैंने पूछा कि इस पूरी जेल मे कोई दूसरा कमरा नहीं है? उसने कहा कि है तो। क्या मैं फाँसी घर मे रहना पसन्द करूंगा? लगे हुए फाटक के पार वह मुझे उक्त जगह दिखाने के लिए बढ़ा भी। कुछ सोचकर वह बोला कि वहाँ छायादार कोई जगह नहीं है और वह लौटा। मैंने बताया कि पुलिस के पहरे में मुझे जेल के किसी पेड के नीचे बैठना गवारा होगा लेकिन उस हत्यारे वार्ड में नहीं। परन्तु वह 'महान्' अधिकारी जैसे पिघलना जानता ही नहीं था। मैंने उसे बताया कि मैं कोई आलू का बोरा नहीं हूँ जिसे जहाँ चाहे जमा कर दिया जाए। आखिरकार हार कर उसे सच उगलना ही पड़ा कि दिल्ली का आदेश है कि मुझे अगले हुक्म तक अकेला ही रखा जाए। अब मेरे सामने कोई विकल्प नहीं था। जैसे ही मैं कोठरी मे घुसने को हुआ तो मैंने उसे अपनी पत्नी के नाम भेजे जाने के लिए तार का यह सन्देश दिया कि उन्हे मेरी बदली की सूचना दे दी जाए ताकि वह अगले दिन मिलने रोहतक न जाएँ वर्ना निराश लौटना पड़ेगा। मैंने इसके लिए पैसा देने के लिए कहा। जिसे सुन कर वह चौंका कि मेरे पास पैसे भी हैं? और उसने जो भी था वह ले लिया। कोठरी में पहुँच कर पहला काम मैंने यह किया कि जे० पी० के नाम वाला पुर्जा नष्ट कर दिया।

कोठरी में कोई पंखा नहीं था। कमोड भी शाम को ही लाया जाना था। सवेरे मुझे बताया गया कि दूकानें अभी नहीं खुली हैं ताकि पंखा खरीदा जा सके। शाम को बताया गया कि पंखे के लिए टेण्डर माँगे गये हैं। अगले दिन

अम्बाला का एक फल-विक्रेता नाथू, जो कि आजीवन कारावासी था, पखा हांकने के लिए तैनात कर दिया गया। एक सजायाफ्ता खूनी का साथ होने पर मुझे ऐसा पुनः नही लग रहा था कि मैं अकेला हूं। चूंकि मैं जेल के लिए बिलकुल ही नया था इसलिए यहाँ के 'अन्तेवासियों' के बारे मे कुछ नही जानता था कि अधिकांश खूनी कितने निरोह होते हैं। जो भी हो, यह उलझन तो थी ही एक आदमी आपको सारा दिन पंखा हांक रहा है। मैंने तब घुमाकर पखा चलाना उसे सिखाया जिससे दोनों को हवा मिले। मैंने उसे बैठे-बैठे झलते रहने को कहा, साथ ही थोड़ी-थोड़ी देर में आराम करने के लिए भी ताकीद कर दी।

लंच के लिए दाल और रोटी मिली। लेकिन मैं न यह, न वह कुछ नहीं ले सका। रोटी में बालू बहुत थी, और उसे विषैला बना दिया हो तो ? जिस सरकार ने खूनियों के बीच डाल रखा हो वह स्वर्ग या नरक कहीं भी भेजने में क्यों झिझकेगी ! इन दो दिनों में भोजन के नाम पर एक गिलास दूध, एक अंडा तथा सवेरे शाम को चाय ही मैंने ली।

शाम को एक जेल अधिकारी आया और उसने बताया कि मेरा तार नहीं भेजा जा सका। वह शब्दावली बदलना चाहता था। बदली हुई शब्दावली का तार उसी दिन शाम को बहुत बाद मे भेजा गया। सुन्दरी को वह तार दूसरे दिन सवेरे मिला जिस समय कि वे लोग रोहतक जाने की तैयारी में थे।

सोने के लिए मुझे बाहर बुलाया गया। लेकिन पागलों के प्रलापों की गूंज से भरे तथा खूनियों के गिरोह से भरे वार्ड के खुलेपन में सोने का विचार मुझे आकर्षित नही कर सका। और बेड़ियों की निरन्तर आती खनकार तो हद ही कर रही थी। बाद मे, जब मैं थोड़ा अभ्यस्त हो गया, मैं उन आवाजों में एक लय खोजने लगा। मेरा ख्याल है कि कोई इनके साथ गा भी सकता है।

मैंने सुन्दरी को एक पत्र लिखा कि वह मेरी चिन्ता न करे। मैंने शाह लतीफ को उद्धृत किया कि "दुःख, सुख के अलंकार है। मैं सुखों का अगर वे बिना दुःखों के आते हैं तो परित्याग कर सकता हूं।" अधिकारी मेरे पत्र को लेकर वापस लौटा कि यह नही भेजा जा सकता। सिंधी की यह पंक्ति संकेत-भाषा में खतरनाक सन्देश बन सकती है। मुझे उसे काट देना पड़ा।

अगले दिन मैंने राष्ट्रपति के नाम एक तार तैयार किया जिसकी प्रतिलिपियां प्रेस-कौंसिल और प्रेस-इन्स्टीट्यूट को जानी थी। संदेश इस प्रकार था :"खूनियों और पागलों के बीच अकेले बन्द किये जाने का घोर विरोध है, हिसार।" तत्काल बाद ड्योढ़ी पर बुलाया गया 'एक मिनिट के लिए।' चीजें जैसी फैली थी, यथावत छोड़ गया। वैसे भी मेरे सूटकेस में कोई ताला तो था नहीं।

ड्योढ़ी पर उसी पुराने एस० एस० पी० और जेल सुपरिटेन्डेन्ट ने पूछताछ की। वे जानना चाहते थे कि मैं किस दिन और किस ट्रेन से अहमदाबाद गया और दिल्ली लौटा। मुझे कुछ भी तो याद नही था। मैंने उनसे कहा कि वे रेलवे से पूछ ले या फिर न हो तो मुहरबन्द आफिस में रखी मेरी डायरी से पता कर ले। तव वे जानना चाहते थे कि मैंने राजनीतिक भविष्यवाणी डाक, तार टेलीप्रिन्टर या टेलेक्स किससे भेजी ? मैंने उन्हे बताया कि अन्तिम दो सुविधाएँ हमारे यहाँ नही है। और मुझे यह भी अब स्मरण नही कि मैंने डाक या तार किसका प्रयोग किया था। मैं पश्चिम रेलवे या मध्य रेलवे किससे गया था ? यह भी मुझे याद नही था। पहली बार मुझे अहमदाबाद के लिए दो मार्गों का पता चला। लेकिन एक बात मुझे याद थी कि वापसी यात्रा के समय उस रास्ते पटरी उखड़ने की घटना हुई थी। पूर्ण आश्वस्ति की दृष्टि से उन्होंने तिबारा पूछा कि मैं कब और किस ट्रेन से गया था और लौटा था। उन्होंने ही मुझे घटनास्थल का भी सही पता बताया। मैं नही जानता कि इस बात से वे क्या पता लगा सके। शायद वे इस बात की संपुष्टि चाहते थे कि मैं सच ही अहमदाबाद गया था, 'वराहमिहिर' से मिला था, न कि अपने कमरे में बैठकर यह खिचड़ी पकायी थी।

इस बीच जेल अधिकारी और एस० एस० पी० अपनी गुप्त मंत्रणा करते रहे। उनमे से एक गया और उसने मेरा सारा सामान छान मारा। वह डायरी ले ली जिसमें कि कुछ मजेदार घटनाएँ लिखी थी। कुछ दूसरे कागज तथा चिल्लर आदि अपने कब्जे मे कर ली। अब सूचित किया गया कि मुझे मीसा वार्ड में भेजा जा रहा है। यह १० जुलाई की शाम थी।

बाद की दूसरी पड़ताल के समय मुझे चाय के साथ गुलाबजामुन तथा नमकीन दिये गये। आधी रात को उस एकान्त कोठरी वाली चार घण्टे की पड़ताल के बाद मैं इस सरकारी तन्त्र के प्रति चौकन्ना हो उठा था। ये गुलाबजामुन विषैले भी तो कर दिये जा सकते हैं। मैं कुछ क्षण को झिझका। इस पर सुपरिटेन्डेन्ट बोला कि एस० एस० पी० मुझे स्नेह करने लगे हैं। तब मैंने कहा : "भगवान् ऐसे स्नेहियों से बचाये।" सब हँस पड़े। सहज होते हुए मैंने तब गुलाबजामुन उठाया।

तीसरी जाँच के समय फिर मारुति और मित्र के सम्बन्ध में प्रश्न किये गये। पहले की तरह ही इस बार भी मैं उन्हें सुना दें गया। लेकिन यह लगा कि अगली पड़ताल के समय मुझसे उगलवाने के लिए संभव है यातना दें। उस शाम मैं

केनटीन गया और मैंने डी० आई० आर० वार्ड के संघ जनसंघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं से अपनी आशंका की चर्चा की।

अधिकारियों को जब मालूम हुआ कि मैं केनटीन तक गया था तो वे घबरा उठे। उन्होंने सारे वार्डनों की खबर ले डाली। इसके बाद तो वह वार्ड दिन-रात ताले मे वन्द रखा जाने लगा। कोई भी फिर कभी केनटीन न जा सका। बाहर खुले में बाजरे की लहराती फसल को देखते खड़े रहना भी मना था। सिर्फ किसी इन्टरव्यू या पडताल के समय ही हम बाहर जा सकते थे। मीसा बंदियों पर लौह-दीवार का घेरा घिर चुका था।

चौथी पड़ताल के समय मुझे ड्योढ़ी मे पूरे एक घंटे तक रोक रखा गया जब तक कि 'महान्' एस० एस० पी० साहब नामूद न हुए। मुझे इतना बुरा लगा कि उसके आने पर मैंने उससे बात करने से इन्कार कर दिया। क्या मैं स्वस्थ नही था ? क्या कोई उलझन थी ? कोई खास बात थी ? किसी ने मेरा अपमान किया था ? क्या वह कुछ सहायता कर सकता था ? मैंने उसको किसी बात का जवाब नही दिया। फलतः मुझे वापस वार्ड मे पहुँचा दिया गया।

अगली जांच के मौके पर वह जानना चाहता था कि 'मधुराम' या 'माधोराम' कहाँ हैं ? उसका मतलब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जनरल सेक्रेटरी माधवराव मूल्ये से था। आश्चर्य हुआ कि पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी तक संघ के शीर्षस्थ नेताओं के सही नाम भी नहीं जानते। तब भला जिस व्यक्ति का नाम हो उन्हें पता नही उसका पता मुझसे क्या खाक चलता।

कुछ दिन पूर्व मेरे मित्र तथा कानूनी सलाहकार अप्पा घटाटे मिलने आये। बातों-बातों में ही मैंने पूछ लिया कि माधवराव जी कैसे है ? और उन्होंने बताया कि वह यरवदा जेल मे है। मैं नही कह सकता कि बाला साहब देवरस के बारे मे पूछने पर कहीं उन्हे कुछ गलतफहमी तो मेरे बारे में नही हुई या घटाटे ने जान-बूझकर माधवराव के बारे मे गलत सूचना दी ताकि मैं सी० आई० डी० इन्सपेक्टर को बहका सकूं। लगता है इन्सपेक्टर को सही नाम मालूम हो चुका था जिसकी सूचना ले जाकर उसने वरिष्ठ अधिकारियों को दी। इस बार जब फिर माधवराव के बारे मे पूछा गया था तो पूर्ण सहज भाव से बताया कि वह तो यरवदा जेल मे सरकारी मेहमान हैं। बाद में मैंने अनुभव किया कि माधवराव जी या दूसरे किसी नेता के बारे मे कुछ नही पूछना चाहिए। इसलिए कि, बाद मे पता चला कि माधवराव जी बाहर थे और फरार थे क्योंकि उनका नाम सूची पर चढ़ा हुआ था।

इन सारी जांच-पड़तालो के दर्म्यान वह एस० एस० पी० इतना खुल गया

था कि एक बार बोला कि यह संजय अपनी माँ की सुरक्षा में सबसे अधिक बाधक है।

मैंने उससे कहा कि लन्दन से प्रकाशित 'द संडे टाइम्स' तथा दूसरे विदेशी अखबार जिनमें इमरजेंसी के समाचार होंगे यदि वह ला सके; तो उसने लाने का आश्वासन दिया परन्तु मिलने पर वह 'भूल गया'। मेरा ख्याल है उसमें के 'मित्र' पर उसका पुलिस व्यक्तित्व हावी हो गया।

एक बार मैंने उससे पूछा कि पुलिस जैसे गंदे मुहकमे में वह क्यों गया? वह अंग्रेजी का प्रोफेसर बनना चाहता था परन्तु दुःखी था कि बहुत देर हो चुकी थी।

* * *

६

• तीन कारागार

हिसार जेल दुखती रग के समान थी। वहाँ का सारा हिसाब-किताब जड़वत था। तीन रुपये रोज में बमुश्किल दाल-रोटी या घी रोटी मिल पाती या फिर गाहे-बगाहे प्याज या गुड़ आपकी ओर फेंक दिया जाता। उस भोजन से आप भूखे ही रह सकते थे। शुरू के दिनों में, जब तक कि जेल के इस नियामती खाने का आदी नही हो गया, जब भी भूख लगती मैं मुट्ठी भर चने(मुँगड़ा)खा लिया करता था। हिसार के उन अजीबो-गरीब चार महीनों में मैंने १३ किलो वजन खोया।

खाटें, लोहे के दरवाजों से जंजीरों में बँधी रहतीं, इसलिए कि दीवाल फाँदने की कोशिश में कहीं हम उन्हें सीढियाँ न बना लें। गुसलखानो में दरवाजे नहीं थे और पाखानों के पल्लों में बोल्ट नहीं थे। बिजली तो इनमे से किसी मे नही थी। पानी के एक गढ़े में से हम नहाते, जो कि सामान्यतः घोड़ो के लिए होता है। जब हम चौधरी इन्दर सिंह, जो कि अब हिसार से सांसद है, को विदा दे रहे थे तो एक वरिष्ठ जेल अधिकारी ने हमें आगाह किया कि हम कोई नारेबाजी नहीं कर सकते। (इन हजरत ने बाद में बताया कि जेल की आचारसहिता के अनुसार जेल में हँसना तक वर्जित है।) जब मैंने उस सहिता को देखना चाहा कि जो नारेबाजी के लिए मना करती है, इस पर वह बोला, "मैं कहता हूँ।" हममें से तब एक बोला, "आप खुदा नहीं हैं।" यह उसे अपने पद का अपमान लगा, वह बोला, "मार्शल-ला के समय आप नारेबाजी कर रहे हैं।" मार्शल-ला ? क्या यह सही है ? क्या मैडम के स्थान पर कोई फौजी जनरल आ टपका ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। शायद गुस्से मे यह श्रीमान जी विचारों में उलझ गये और शब्दावली मे गड़बड़ा गये।

मुजीब की हत्या के बाद से, मध्य अगस्त से लेकर सितम्बर के अन्त तक कोई चिट्ठी नही मिली और न ही सुन्दरी को मेरा कोई पत्र। इसके बाद हिसार

और दिल्ली के बीच पत्रों को सामान्यतः बारह दिन लगने लगे। हमने इसे 'चिट्ठी चोर सरकार' नाम दिया। हताशा मे कुछ बंदी गाते : "कपोत ! क्या तुम यह पाती मेरी प्रिया तक पहुँचा सकोगे ?" मुझे विश्वास रूप से बताया गया कि भेजने के पूर्व चिट्ठियाँ हिसार, चंडीगढ़ और दिल्ली मे सेंसर की जाती हैं।

जब छह सप्ताह तक सुन्दरी को मेरा कोई पत्र नही मिला तो मेरे स्वास्थ्य की जानकारी के लिए उन्होंने तार दिया, परन्तु मुझे उस तार की कोई सूचना तक नही दी गयी। अगले इंटरव्यू के समय जब यह बात उठी तो मैंने अधिकारियों से कहा कि वह तार मुझे क्यो नही दिया गया तो चिकनी-चुपड़ी बातों वाले एक अफसर ने कहा : "वो···जी, उस पर आपका नाम ही नही था।"

पहली दो मुलाकातों के समय बड़ा ही 'अहसान' जताते हुए बच्चों को, वह भी देर से मिलने दिया गया था क्योंकि आदेश तो 'केवल दो' के लिए ही था। दिल्ली के अधिकारी आदेश पत्र में बच्चो के नाम जरूर ही इस कारण नही दिये होंगे क्योंकि वे तो 'स्वतन्त्र' थे।

हर चीज को पूरी तरह उलट-पुलट कर भलीभाँति परख लिया जाता कि कही कोई कागज की एक चिंदी भी इधर-उधर न आ-जा सके। एक मुलाकात के समय सुन्दरी मेरे लिए रूना लैला का सिंधी गीत 'झूलय लाल' के बोल लायी। वह उन्हे विशेष रूप से देवनागरी में लिखवा लायी थी ताकि यह कह कर कही न लौटा दिया जाए कि अपरिचित सिंधी लिपि मे कुछ 'गुप्त' निहित है। मुझसे कहा गया कि अगर चण्डीगढ इसे पास कर देगा तभी यह बाद मे मुझे दे दिया जाएगा अतः मैंने वे बोल वापस कर दिये।

एक मुलाकात के मौके पर मोटे सी० आई० डी० अफसर ने मेरे और सुंदरी के बीच मुलाकात रोक कर एक टेबल रखवा दी, अतः उस 'मोटी बुद्धि के महाशय' के लिए हम जोर-जोर से बोलते रहे ताकि वह सुन सके। मैंने इस बैजनाथ को 'बैलनाथ' नाम से 'भूषित' कर रखा था। इस पर बेटी सिन्धु ने उसमें सुधार किया—'बदनाथ'।

बहरहाल हिसार अच्छाइयों से शून्य भी नही था। हर एक के लिए वहाँ कोठरी थी। शुरू के पहले महीने मे वहाँ इतनी शांति थी कि हम रेल की सीटी और डी० सी० एम० के भोंपू को भी सुन सकते थे। शोर के आक्रमण में यह एक स्वागत योग्य स्थिति थी।

प्रत्येक सवेरे कैदी यह कयास लगाते होते कि ए, बी, सी वाली चक्की की अशुभ कोठरी के दरवाजे पिछली रात चूँ चूँ तो नही बोले क्योंकि तब वहाँ बदली किये जाने की आशंका हो सकती थी। ए, नाम की जेल की कोठरी आज भी

'चक्की' ही कहलाती है जहाँ कि बिजली की चक्की लग जाने के पूर्व तक पुराने ढंग की चक्कियाँ ही शोभित रहती थी।

डी० आई० आर० वार्ड के संघ, जनसघ के मित्र, जिनसे मैं पहले कभी नही मिला था, स्नेहवश मुझे फल, मिठाई और मेवे तक भेजते रहे जब तक कि विनोद शून्य अधिकारियों ने ऐसा करने पर रोक न लगा दी।

वर्षा के आते ही कई बंदियों ने गाना शुरू किया : "धन्य है तेरे दो टके की नौकरी कि मेरा लाखों का सावन जा रहा है।" और इसमें मौलिक रूप से जोड़ा गया : "हाय मीसा की मजबूरी।" व्यापक रूप से मीसा की व्याख्या थी—'मेन्टेनेन्स आफ इन्दिरा एंड संजय एक्ट' (इन्दिरा और सजय की सुरक्षा का कानून)। एक बंदी ने कुत्ते के एक पिल्ले का नाम ही 'मीसा' रख छोड़ा था।

वैसे तो वहाँ आम भिवानी की चर्चाएँ ही होती परन्तु खासकर मारवाड़ी सेठों की सारी जन्मकुंडली से मुझे अवगत कराया गया। राव राम नारायणसिंह ने, जो कि हरियाणा राज्य विद्युत् परिषद् के 'हटाये गये' सचिव थे, बंसीलाल के 'हरियाणा के सारे गाँवों में बिजली वाले हो हल्ले की सारी पोलपट्टी बतायी। इन सारी कहानियों को गप के तानों-बानो से गूथा जा सकता है। उनमें से एक यह कथा कि मयूरी मोर के आँसू देखकर ही गर्भवती हो जाती है। भले ही सत्य न हो परन्तु मार्मिक तो है ही। एक दूसरी कहानी जो कि गप लगती थी परन्तु एक मूर्तिभंजक आर्यसमाजी के द्वारा सुनने पर सच तो निकली ही, मजेदार भी। भिवानी के बपोरा गाँव का एक व्यक्ति रामप्रताप; मथुरा के एक घुमक्कड़ साधू से टकराया। उसने चमत्कार दिखाने के लिए साधू से कहा। बड़े ही अनमने भाव से वह साधू कुछ देर को कम्बल ओढ़ कर लेट गया और उसने एक तश्तरी में मथुरा के पेड़े प्रस्तुत कर दिये। साथ ही उस साधू के पैर भी बरसाती कीचड़ में सने हुए थे। एक स्थानीय अध्यापक ने एक पेडा चखा भी। इसके बाद साधू ने उन पेडों तथा अपने को फिर कम्बल से ढँक लिया और जब फिर प्रकट हुआ तो न कही प्लेट थी और न पेड़े।

महीनों पर महीने बीत रहे थे और मैं चिन्तित था कि परिवार किस प्रकार चल रहा होगा। मुझे याद है कि मैं अपने पीछे बैंक मे ३०० रुपये (अब मुझे मालूम हुआ कि वह 'महान्' राशि ३२० रूप की थी) छोड़ आया था। हालांकि सुन्दरी ने मुझे तत्काल ही पत्र लिखा कि इस बारे में मुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है, फिर भी सोचता तो रहा ही कि वे लोग सब कैसे जुगाड़ बैठा रहे होंगे। लेकिन सी० आई० डी० 'इन्सपेक्टर' के सामने सुन्दरी से

पूछना अप्रिय लगा। यह तो पांच महीने बाद १६ नवम्बर को दिल्ली हाईकोर्ट में मुझे पता चला कि मेरे परिवार के लिए मित्र किस प्रकार सहायक हुए।

हिसार के दिनों में मैंने तत्कालीन प्रधान-मन्त्री को उनके नाम के स्थान पर 'माई' कहकर पुकारना शुरू कर दिया था। विभिन्न भारतीय भाषाओं में जिसका अर्थ माँ से लेकर स्त्री मात्र हो सकता था। उसके नाम का उच्चारण ही अपवित्र हो चुका था। हमारे हरियाणा के दोस्त लोग एक नाम, जिसे छापा नहीं जा सकता, लेते थे जो कि 'र' से आरम्भ होता था।

कई चिन्तित थे कि पता नहीं कब तक सामान्य होगा। मैं उनसे कहा करता था, "जिस प्रकार एक दिन लोकतन्त्र सहसा समाप्त हुआ उसी प्रकार एक दिन वह हठात उदित भी होगा।" लेकिन वह दिन बहुत दूर लगता था।

कई कैदियों का ख्याल था कि वे या तो १५ अगस्त या २ अक्तूबर या फिर १४ नवम्बर को छोड दिये जाएँगे। मैं उन लोगों को विश्वास दिलाता था कि जो कुछ हुआ है वह इतना क्रूर है कि उसे स्वाधीनता-दिवस का उपहार या गांधी जयन्ती की भेंट या नेहरू जयन्ती के तोहफे के रूप में प्रस्तुत करके विफल नहीं किया जा सकता था। मेरा तर्क होता कि श्रीमती जी की कुर्सी बचाने के लिए ही इमरजेन्सी लागू की गयी है। वह हटेगी तभी जब सुप्रीम कोर्ट के द्वारा वह सुरक्षित हो जाएँगी, चुनाव-नियमों में सम्पूर्ण परिवर्तन कर लिये जाएँगे। हालाँ कि मैं गलत सिद्ध होने वाला था।

फैसले के तत्काल बाद घोषणा की कि मैडम राष्ट्र के नाम प्रसारण करेंगी। हममें से कइयों का विचार था कि भले ही वह इमरजेन्सी न हटायें पर व्यापक रिहाई की वह घोषणा करेंगी। पूर्णिमा की वह उज्ज्वल शीत रात्रि थी। हम लोग खुले में घेरा बनाकर बैठ गये। मैडम ने अभी भाषण समाप्त भी नहीं किया था कि सबकी समझ में आ गया कि उनकी काम-काज वाली मंशा नहीं है। एक प्रत्यक्ष श्रोता होने के नाते मैंने अन्त में रिमार्क किया : "देवी जी ने दुनिया-जहान की चर्चा की, शायद गोबर गैस और जाहिर है बंदियों की नहीं।" स्पष्ट हो गया कि हमारी यह गिरफ्तारी एक लम्बा सिलसिला है।

जेल में एक दूसरे के साथ जबरिया रख दिये जाने पर लोग एक बोझ एक तनाव अनुभव करते है। यह अपनी सीमा की भावना के विरुद्ध जाता है क्योंकि एक जीवित प्राणी की न्यूनतम आवश्यकता अपनी जगह और अपना निजीपन होता है। तब भी मैं यह कह सकता हूँ कि अधिकांश बन्दी अपने इस तनाव को मुस्कान में बदल सके। सारा वातावरण पिकनिक की भाँति सुखद था। केवल इतना ही कि पिकनिक थोड़ी लम्बी हो गयी थी।

जब यह खबर आयी कि मुझे २० नवम्बर को दिल्ली हाईकोर्ट में प्रस्तुत होना है तो मैंने इस संभावना का स्वागत किया। घर से बढकर और क्या हो सकता है ? अपने ही शहर की जेल दूसरे शहर की जेल से बेहतर ही है। ज्योतिषी ने १६ नवम्बर के लिए शुभ भविष्यवाणी ही की थी। संयोग से इस दिन, मेरा जन्मदिन भी है—दिल्ली की बदली हुई, हालांकि हथकड़ियों में। मैं इस अपमान का विरोध कैसे करूँ ? अतः मैंने उन लम्बे चार घंटों में पुलिसवालों से एक भी शब्द न बोलने का निश्चय कर लिया। रास्ते में उनके साथ चाय पीने से भी इन्कार कर दिया। मैं समझता हूँ कि वे समझ गये थे।

पहले के एक अवसर पर हिसार से जैसे ही अपने साथियों से विदा हो रहा था कि भिवानी के पंडित नरेन्द्रनाथ ने हिन्दी में लिखा एक पर्चा थमाया, जिसमें लिखा था;

"कहें क्या विदा-वेला पर
हैं कितने लाचार,
दो शब्दो में श्रद्धानत हो
नमन करें सौ बार !
रुक न सको तो जाओ, तुम जाओ
पर इतनी है तुमसे फरियाद
नित्य नही तो कभी-कभी
कर लेना हमको याद।

तिहाड़ जेल में जाँच-कर्मचारी छुरी-काँटे वाली जो थोडी कटलरी थी वह भी ले गये। जरूर ही इन्हे ये चीजे सांघातिक अस्त्र लगी होगी। वरिष्ठ अधिकारियों ने बाद में कटलरी तो रखने दी परन्तु रेडियो की अनुमति नही दी। हरियाणा में रेडियो की आज्ञा थी परन्तु तिहाड़ मे नहीं। अफसरशाही के भी अपने ही निगूढ तेवर होते हैं।

हाईकोर्ट का वह अगला दिन स्मरणीय था क्योंकि वहाँ कुछ नही हुआ परन्तु बाहर बड़ा तमाशा हुआ। पाँच महीनों में पहली बार सी० आई० डी० की क्रूर चौकस आँखों से बचे बच्चो को मैंने देखा। मिलने आये आधे दर्जन सांसदों से मैंने आध घंटे मे राजनीतिक परिस्थिति के बारे में इतना कुछ जाना कि मैं हिसार में एक वर्ष एकान्त वास में भी नही जान सकता था।

बहरहाल शाम को जब एडवोकेट श्री चरतिलाल गोयल और मुझे एक खुले ट्रक में तथाकथित तस्करो की एक भारी गिरोह के साथ घुटने के बल चढने के

लिए कहा गया तब मुझ पर एक तरह की उदासी छा गयी। ट्रक में जानवरों के सिर जैसे खडे थे जो कि भागती ट्रक के कारण इधर-उधर गिरे पड़ रहे थे। अपने पिता को जब एक सामान्य अपराधी की तरह ले जाते बच्चे देखते होंगे तब वे क्या सोचते होंगे ?

यह अपमान एक तरफ, यह शुभ समाचार सुनने को मिला कि खुफिया विभाग ने रिपोर्ट दी है कि ७४ प्रतिशत जनता सरकार के विरुद्ध हो गयी है। हर बंदी नायक बन गया है। जितने अधिक दिन वह हमें बन्द रखती है उतना ही उनके लिए हानिकर है। निर्धारित समय पर चुनाव करवाने का प्रश्न ही नहीं था। लोग बडे मौन भाव से देवी जी के विरुद्ध थे। एक बार बच्चों से जब मैंने पूछा कि लोग क्या अनुभव करते है ? तो विक्रम ने संक्षिप्त सा जवाब दिया : "सब ठीक हैं पर कोई खुश नही है।" मार्च १९७७ का चुनाव मैडम २६ जून १९७५ को ही हार गयी थी।

शुरू से ही इमरजेंसी के प्रति अपनी नापसंदगी तथा शिकार हुए व्यक्तियो के प्रति सहायता एवं सहानुभूति को जनता ने बिलकुल नहीं छुपाया। इमरजेंसी के पूर्व मेरा अखबार का खर्चा, लगभग १०० रुपये प्रतिमास था। बहरहाल अखबार वाले ने जून १९७५ के बिल के पैसे लेने से ही इन्कार कर दिया। मैं ऐसे बन्दियों को जानता हूँ जिनके मकान-मालिको ने किराया लेने से ही इंकार कर दिया था एक पब्लिक-स्कूल के हेडमास्टर ने एक बन्दी के बच्चों की फीस ही नही ली।

जो हो, दिल्ली की वापसी, दिल्ली जेल में ही सही घर का अहसास करा रही थी, ताकि अच्छा लगे। इससे अच्छा जन्म दिन का उपहार मुझे नही मिल सकता था। पुराने परिचित चेहरे, सुखद सामूहिक जीवन, साप्ताहिक भेंट और सारी बातों की अध्यक्षता करते आदरणीय लाला हंसराज, जो हर दृष्टि से, पोर-पोर से पहले के राजा अग्रसेन के उत्तराधिकारी लगते थे—जेल मे और क्या अपेक्षा की जा सकती है ?

मीसा-वार्ड थर्ड क्लास के डिब्बे जैसा भरा हुआ था। दो खाटों के बीच जरा भी जगह नहीं थी इसलिए एक व्यक्ति के करवट लेते ही दोनों ओर के मित्रों को इस हरकत का पता चल जाता था। नवम्बर की उन ठंडी रातो में कई तो तम्बुओं मे पड़े हुए थे। टट्टियाँ साफ ही नही हो पाती थी और गुसलखानों में न तो नल का पानी था, न बिजली थी और न ही कुंडी। हठात कोई दरवाजा न खोल ले इसके लिए दरवाजे से सटाकर बाल्टी रखनी पड़ती थी। गरम पानी के लिए वार्ड के २०० बन्दियो के बीच एक साथ एक बिजली की राड थी। कपड़े धोने को कोई जगह ही नही थी। जहाँ तक खाने का सवाल था तो किस्मे तो

सभी थीं, अनाज भी बहुत था परन्तु सब्जियाँ बहुत कम भी होती, साथ ही सराब भी।

बाद में, दूसरे वार्ड में, जिसमें राजनारायण को पहले अकेले में रखा गया था, हम इसी शर्त पर गये कि इस वार्ड नम्बर एक में और पास के वार्ड नम्बर दो में दिन भर आवा-जाही की खुली छूट रहेगी। इस नये वार्ड में पाँच चक्कियाँ थीं। लेकिन यहाँ भी आठ फिट, बारह फिट की एक चक्की पर तीन-तीन लोग थे।

जो हो वार्ड में तो जगह की कमी थी पर बन्दियों के दिलों में अनन्त थी। खूब खेलते, गप मारते और उन बेचारे बन्दियों को जिनका कि इस दुनिया में हाल पूछने वाला कोई नही था, के लिए भेजे गये व्यंजनों पर जम कर हाथ साफ करते। हम सबका यह विश्वास है कि घर से ज्यादा यहाँ हमने मिठाइयाँ और फल खाये होंगे। हममें से ज्यादातर पाँच बजे के तत्काल बाद जाग जाते और बिल्कुल प्लेटफार्म के ढंग पर मस्ताने तरीके से चिल्लाने लगते—"चाय गरम चाय' "पान-बीड़ी।" लाला जी, हमारे केक, पुडिंग और कबाब की आवाजों को सुनते और मुसकराते हुए हमारे वार्ड को 'अशोका होटल' कहते। दिन का प्रारम्भ हम प्रातः स्मरण (कराग्रे वसति लक्ष्मी) से करते परन्तु घटों हम 'स्वीप' खेलने मे भी बिताते थे। जिसे हम मजाक में 'समग्र क्रांति' कहते थे। और वास्तव में तो बाहर की काम-काजी दुनिया से यह सर्वथा भिन्न था।

तिहाड़ मे मीसा बन्दी पाँच वार्डों मे विभक्त थे। वार्ड नम्बर १ में युवा नेता, छात्र, अध्यापक और पत्रकार थे; लाला हसराज गुप्त सांसद, जगन्नाथ राव जोशी और सांसद सुन्दर सिंह भंडारी वार्ड नम्बर २ में थे। श्री चरण सिंह, सरदार बादल वार्ड नम्बर १४; सुरेन्द्र मोहन आदि वार्ड नम्बर १५ तथा नानाजी देशमुख और जमायते इस्लामी के लोग वार्ड नम्बर १७ में थे।

कई दिनों से हम माँग करते आ रहे थे कि हमें सप्ताह में एक बार मिलने दिया जाए। ८ फरवरी १९७६ को पहली बार हमारी माँग मंजूर हुई। समारोह जैसे उत्साह के साथ हम सब ने साथ-साथ लंच लिया। बाद में हम सब वार्ड नम्बर १ की चक्की १ पर मिले। और यहाँ हमने विचारों का आदान-प्रदान किया। चरण सिंह ने बिना किसी शर्त के तत्काल चारो पार्टियों के विलय का आग्रह किया तथा यह भी कि बी० बी० सी० से यह खबर तुरन्त घोषित होनी चाहिए। वह आश्वस्त थे कि इससे स्थिति मे गुणात्मक परिवर्तन आएगा। दूसरे सब सहमत थे। नानाजी का कथन था कि विभिन्न जेलों से यदि संबंधित सारे

नेताओं की स्वीकृति मिल जाए तो इस समाचार का प्रसारण कोई समस्या नहीं होगी।

अगले रविवार को वार्ड नम्बर १४ में हम मिले जिसमें चरणसिंह और बादल आतियेय थे। यहाँ पुनः नेता लोग एकान्त में मिले। श्री सुरेन्द्र मोहन का कहना था कि राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ भी इस नयी पार्टी में शामिल हो ! उन्हें बताया गया कि संघ एक अराजनीतिक सास्कृतिक संस्था है अतः उससे यह आशा नही की जा सकती कि वह कोई राजनीतिक दल मे शामिल हो।

इस बीच उस तथाकथिक तांत्रिक से भेट हुई जिस पर शक था कि वह मैडम के पतन के लिए बहुगुणा जी के सकेत पर 'पूजा' कर रहे थे। वह एक शांत निरभिमानी व्यक्ति थे उन्होंने तांत्रिक होने से अस्वीकार किया परन्तु वह ज्योतिष और वैद्यक में रुचि रखते थे। अपने स्वास्थ्य के बारे में कई बन्दियों ने उससे परामर्श किया। और तो और जेल के कई अधिकारी उनका चरण-स्पर्श करते थे तथा अपने परिवार को जन्मकुण्डलियाँ दिखलाते थे। यह मालूम हुआ कि वह केवल गंगा-जल ही सेवन करते थे और जिसे उनके भक्तगण नित्य लाते थे।

रविवार के बाद हम नानाजी के वार्ड मे मिले और हमें यहाँ जेल-जीवन का सर्वश्रेष्ठ भोजन प्राप्त हुआ तथा बहुत उम्दा सगीत भी सुनने को मिला।

इसके बाद हम मोरारजी भाई के जन्म-दिन २९ फरवरी के रोज वार्ड नम्बर १ में मिले। खूब गाने गाये गये, भाषण हुए और मिठाई बाँटी गयी।

मैं समझता हूँ कि जेल को लेकर किसी की भी अच्छी धारणा नहीं हो सकती क्योंकि मानना ही होगा कि जेल, जेल ही होती है। जेल, व्यक्तियों और वस्तु-स्थितियों के बारे मे एक दृष्टि देती है तथा आपकी अन्तर्दृष्टि को गहराई भी। वन्दी जीवन की यातना से मुक्ति के लिए हममें से अनेक 'हनुमान-चालीसा' का पाठ करते थे। एक बार हमारे वार्ड मे बडे ही विशद रूप में रामायण का अखण्ड-पाठ भी सम्पन्न हुआ था।

जेल में महिला बदियो के लिए विशेष कठिनाइयाँ थी। यहाँ उनकी संख्या एक या दो ही थी। अकेलापन बड़ा जानलेवा होता है। कम-से-कम जेलो में मीसा बंदियों को वार्ड के बाहर घूमने की छूट थी। महिला बंदी दिन-रात बद रखी जाती थी।

पुरुषो को तो अपराधियो के साथ अधिक नही रहना पड़ता है सिवाय जब कि नौकर के रूप वे टहल के लिए आते है, लेकिन स्त्रियाँ को तो अपराधियो के साथ बंद रहना पड़ता है क्योंकि किसी भी जेल में महिलाओं के लिए एक ही

वार्ड हुआ करता है। अतः ऐसा लगता है कि महिला बंदी ही नही बल्कि उनके परिवार, पुरुषों की अपेक्षा अधिक भुगतते हैं।

हालांकि सारे बंदी चकित थे परन्तु सब दृढ बने रहे। इस तूफान के सामने मुश्किल से ही कोई झुका होगा। बाहर लोगो के लिए यह प्रेरणास्पद था। फिर भी इन लोगों की दृढता का अधिक श्रेय उनको था जो बाहर थे। ये मुट्ठीभर बंदी जो कि 'थीम सूत्रीय' हो गये थे, जब गये तो उन्होंने पाया कि वे प्लेग हैं और अलग रखे जा रहे हैं।

मैं एक बंदी का मिलने आयी अपनी माँ से हुआ वार्तालाप नही भूल सकता। महाशय जेल में कुछ असुविधा अनुभव कर रहे थे लेकिन उनकी माँ ने उन्हें दृढ रहने का आदेश दिया। जब पुत्र ने कहा कि उसका व्यापार घोटाले में पड़ जाएगा तो वह तमक कर बोली—"व्यापार ? बाहर तुम कौन सा काम करते ही हो ?" वह बोली, "जब से तुम जेल आये हो परिवार की इज्जत बढ गयी है। मैं कहती हूँ जब तक जरूरी हो, तुम रहो।"

साथ ही यह कि बंदियों के परिवारों की सहायता तथा देख-रेख भी बाहर रहे लोगों ने ही की। एक समय तो इस प्रकार के परिवारों की संख्या ४०,००० से भी अधिक हो गयी थी। साथ ही मीसा वारंटों के कारण हजारों फरार और भूमिगत व्यक्तियों को शरण तथा सहायता देने का काम भी इन्ही लोगों ने किया। यह उत्साहवर्धक अनुभव था।

जब डी० आई० आर० के 'अंडर ट्रायल्स' को कचहरी ले जाया जाता तो वे रास्ते भर नारे लगाते जाते। रास्तों में आते-जाते लोग रुक कर उन्हे सुनते। हर बार जब वे 'इंदिरा गाँधी मुर्दाबाद' चिल्लाते उनके चेहरे चमकने लगते। एक स्कूटर-ड्राइवर अपनी सवारियो से यह कहता पाया गया, "इन नारो को फिर से सुनकर कितना आनन्द मिलता है।"

एक बार तिहाड में साप्ताहिक मुलाकातों के सिलसिले मे सुन्दरी ने मुझे बताया कि एक मित्र ने जिन्हें ज्योतिष का शौक है, बताया है कि १६ मार्च और १६ अप्रैल के बीच मुझे घर लौट आना चाहिए। मैं घर तो नही लौटा लेकिन इमरजेंसी के दर्म्यान मैं अपने दूसरे घर, रोहतक जेल अवश्य ही लौटा।

दूसरी बार मेरे बारे में ज्योतिषी का कथन सही निकला—लगभग सही। जगन्नाथ राव जोशी, सुरेन्द्र मोहन तथा कुछ अन्य व्यक्तियो के साथ २३ मार्च को मेरी बदली हुई।

७

• हवामहल

१९७६ की होली का आगमन सुखद था। यह वसंत ऋतु थी। हमारे पास गुलाल, हवा और अन्तहीन प्रसन्न हँसी के फव्वारे थे और यदि एक गुप्त रहस्य खोलूँ, तो बता सकता हूँ कि वार्डों में घूम-घूम कर होली मनाने के लिए हमारे पास एक कैमरा भी था। शाम को हम लोग पॉप-संगीत का आनन्द ले रहे थे कि आचनक साइरन बजने लगा। क्या यह हनुमान मंदिर में बज रहा है? परन्तु वहाँ तो साइरन नहीं घंटे-घड़ियाल बजते है। तभी वार्डर ने दरवाजे बंद किये और चौकाने वाला समाचार दिया कि कोई एक दर्जन बंदियों ने जेल से निकल भागने के लिए सुरंग खोद ली है। अवश्य ही वे लोग महीनों से वह सुरंग खोद रहे होंगे, ताकि जिस दिन कर्मचारी कम हों या शराब में धुत्त हों तो भाग निकलें।

इसके बाद घेरे बंदी हो गयी। सारे वार्ड दिन-रात बंद रखे जाते। सिर्फ पाँच बजे का ही एक ऐसा वक्त होता था जब हम अपना दूध लेने दूसरे वार्ड में जा सकते थे। फ्लड-लाइटे जेल के ऊपर जलने लगी थी। हमारे वार्ड की निगरानी करता एक सशस्त्र पहरेदार चौबीसों घण्टे चौकी-गुम्बद (वाच-टावर) पर खड़ा रहता। अगर कही वह पागल हो जाता तो वह हम सब को बतखों के झुण्ड की भाँति गोली से भून सकता था। वास्तव में तो एक अवसर पर नीचे खाईं में, एक सेंध की चौकसी करते हुए पहरेदार यह चिल्लाया कि यदि वह चलता नही रहेगा तो गोली चला देगा।

२३ मार्च को वार्ड नम्बर १ मे हम चार व्यक्ति—दूसरे वार्डों मे भी कई और—अभी लंच ले रहे थे कि हमें सूचित किया गया कि बदली के लिए तैयार होकर दो बजे तक ड्योढी पर पहुँच जाएँ। हम लोग साथ छोड़कर जाना नही चाहते थे, क्योंकि भगवान् और सरकार ही जानते रहे होंगे कि कहाँ? हममें से

एक आई० आई० टी० अध्यापक-संघ नयी दिल्ली के अध्यक्ष श्री सुरेश उपाध्याय गुरु को फतहगढ केन्द्रीय कारागार मे भेजा गया था, जहाँ से उन्होंने लिख भेजा था : "फतहगढ आने के पूर्व तक नरक से परिचय नही था।" क्योंकि यहाँ बिजली नही थी और कैदियों को उनकी कोठरियों मे ६ बजे ही बन्द कर दिया जाता था।

हम पुलिस की एक गाडी में ठूंस दिये गये, जिसने कई जगह रुकने के बाद हमें एक रेलवे स्टेशन पर ला पटका। यहाँ हमें पजाव-मेल के थर्ड-क्लास के एक डिब्बे मे फिर गठिया दिया गया और आखिर में आधी रात मे हमें रोहतक में जमा कर दिया गया। रास्ते में हमें खाने-पीने और कुली के लिए पैसा देना पडा। जेल मे पहुँचते ही एक काने कान्सटेबल ने हमारी जेबें टटोली जैसे कि अभी तक हम सब फरार थे और हमारे पास बम वगैरह होगा। (योगायोग की बात है कि यह काना कान्सटेबल ही जेल में एक मात्र वार्डर था जिसने मार्च १९७७ के चुनाव मे काग्रेस को वोट देने की बात कही थी। दूसरों ने बच्चों की सौगन्ध खायी थी कि वे जनता को वोट देंगे।)

रोहतक में पुराने साथियो से मिलकर सुख मिला। जब मैंने (दूसरे) 'घर' की इस बदली के बारे मे ज्योतिषी की भविष्यवाणी के बारे में उल्लेख किया तो जगन्नाथ राव जोशी को स्मरण आया कि जिस दिन हमारी बदली हुई थी उस दिन उनके हाथ से मिट्टी का घड़ा छूट कर गिर पडा था, तो उन्होंने कहा था, "तिहाड़ में मेरे दिन पूरे हो गये।" और वही हुआ भी।

ऐसा लगता है कि ज्योषियों के बारे में ऐसे ही रोचक अनुभव दूसरों के पास भी होंगे। अशोक मेहता ने अपना कुचला हुआ अँगूठा दिखलाते हुए कहा कि डॉक्टर वसन्त कुमार पडित के पिता ने मेरे साथ घटने वाली दुर्घटना की भविष्यवाणी उनकी काकी से की थी। हालाँकि उन्होंने इसकी कोई पर्वाह नही की और कार से नासिक के लिए चले और भविष्यवाणी वाले दिन दुर्घटना घटी।

पीलू ने बताया कि जब वह बहुत छोटे थे तो एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि वह बहुत सारे मकान बनवाएँगे। उस समय उन्हे लगा कि वह बहुत बडे जमीदार बनेंगे। लेकिन जैसा कि हुआ, उन्होंने ढेरों मकान बनवाये, लेकिन अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए, एक भवन-निर्माता के रूप में।

भैरोंसिंह ने बताया कि एक खास सप्ताह मे गम्भीर दुर्घटना के लिए उन्हे आगाह कर दिया गया था। उन्होंने उन दिनों अपने को निष्ठापूर्वक घर में ही बन्द रखा। अन्तिम दिन जयपुर में जनसंघ की विशाल बैठक होने वाली थी और उसमें उन्हें जाना था। भविष्यवाणी का उन्हें ध्यान था ही इसलिए यह

प्रबन्ध किया कि वह घर से कार में ही निकलें। जब वह मीटिंग के बाद पान के लिए अभी कुछ कदम चले ही होंगे कि एक तेज आते ताँगे ने उनका पैर कुचल कर टुकडे-टुकडे कर दिया। वह बाल-बाल अंग-भग होने से बचे।

जगन्नाथ राव जोशी के पास तो और भी मजेदार सुनाने को था। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय वह मिलिट्री एकाउन्ट्स विभाग मे काम करते थे जिससे परिवार का भरण-पोषण भी हो रहा था तथा अपने विवाह-प्रस्तावों पर भी सोच रहे थे। इस बीच घूमता हुआ एक ज्योतिषी आया और उसने भविष्यवाणी की, "यह व्यक्ति कभी विवाह नही करेगा। अपने परिवार के किसी काम नही आएगा। इसकी यह नौकरी भी नही रहेगी पर यह भूखा नहीं मरेगा।" और उस समय जो कुछ तथ्य था उससे तो भविष्यवाणी मिथ्या ही थी लेकिन कुछ ही महीनों बाद वह सर्वथा सच सिद्ध हुई। उनका पूना तबादला हुआ जहाँ उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दिया और राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ के प्रचारक हो गये। विवाह का विचार ही छोड दिया तथा परिवार के किसी काम नही आये। लेकिन संघ के प्रचारक होने के नाते उनका आवास और भोजन आदि सुरक्षित थे, क्योंकि यह संघ का दायित्व था।

अप्रैल १९७६ मे महारानी पटियाला बँगलौर गयी और साईं बाबा से भी मिली। बाबा ने अशोक जी के बारे में पूछा। जब उन्हें बताया गया कि उनका स्वास्थ्य ठीक नही रहता तो साईं बाबा ने 'भभूति' देते हुए कहा कि उन्हें १५ मई तक घर आ जाना चाहिए। और अशोक जी १५ मई की सवेरे ही छोड दिये गये।

रोहतक में जो मित्र-मण्डली मिली उस कारण वहाँ का रहना बड़ा स्मरणीय रहा। अशोक मेहता के साथ आध घंटा बिताना भी उदार-शिक्षा के समान था। महाशय बीन्नू का उत्साह तो छून के समान था। सुरेन्द्र मोहन तो चलते-फिरते पुस्तकालय ही थे। मेजर जयपाल सिंह जमींदार कम सैन्य अफसर, जो कि मार्क्सवादी हो गये थे। जेल के सींखचों के बीच भी हँसना, इसमे पीलू सब के सहायक थे। संघ के सत्याग्रहियों के दल के आकार और प्रकार से सभी प्रभावित थे। एक दिन एक वरिष्ठ नेता बोले : "संघ को मेरे हाथ में सौंप दो तो मैं भारत का नक्शा ही बदल दूँ।" इस पर भैरोंसिंह बोले : "तो फिर आप ही संघ में क्यों नही आ जाते ?" इस पर वह हँसे और वापस जाते हुए बोले : "यह सब नहीं होगा। यदि मैं संघ मे शामिल हो जाऊँ तो ये सब मुझे निगल जाएँगे।"

हिसार के पुराने स्वतंत्रता सेनानी श्री बलवन्त राय तयाल ने हमें वह स्नेह

दिया जो कि अपने बच्चों के लिए माँ का होता है। उनके चचेरे भाई श्री बलदेव तयाल, जो कि हिसार के प्रमुख वकील हैं, उन रत्नों में से हैं, जो कि जनता संघर्ष से जन्मे हैं। प्राध्यापक प्रेम सागर, सौन्दर्योपासक व्यक्ति थे। सांसद श्री भैरोंसिंह शेखावत के पास राजस्थान के राजा-रानियों की ढेरों प्रेमगाथाएँ थीं। अपने तर्रार बचपन के कारण समरगुहा 'दाव-दाव फट-फट' के नाम से जाने जाते थे। वह उतना ही मीठा गाते थे जितना कि कोई बंगाली गाता है, परन्तु गायक और श्रोताओं में इस पर सहमति नहीं हो पाती थी कि जो उन्होंने गाया वह मालकौस था या मल्हार। अपनी प्रिय उर्दू की शायरी से सिकन्दर साहब सब को मोह लेते थे। वे सब कितनी मनोरम होती थी। कुछ तो आज भी याद आती हैं।

हवादस-ए-रोज़गार, मेरी खुशी से क्या इंतिक़ाम लेंगी
कि जिन्दगी वो हसीन ज़िद है जो बेसबब मुस्करा रही है।
—आदम

हवा जहाँ तेज़ चल रही थी, वहाँ चिरागे वफ़ा जलाया
शिकायत इसमें नहीं किसी की, शिकार हूँ अपनी सादगी का
—जमील मुज़हरी

'पी० एम०' को—पीलू मोदी का यही लोकप्रिय नाम था, चूहों से विशेषकर एलर्जी थी। अगर उन्हें कोई एक चूहा भी दिख जाता तो वह तब तक आराम नहीं कर सकते थे जब तक कि वह या तो बिल में वापस न चला गया हो या फिर, अच्छा तो यही कि, पकड़ कर मार न डाला जाए। किसी ने फब्ती कसते हुए कहा : "लेकिन चूहे से आप इतना डरते क्यों हैं, वह कोई शेर तो है नहीं।"

डांटते हुए पीलू साहब बोले : "शेर ! शेर से कौन डरता है ?" इस पर लोग जोरों का ठहाका लगाते हैं।

मेरा ख्याल है कि इस दूसरे जीव से डरनेवालों में पीलू अकेले ही नहीं होंगे। जनाब, मैं कुत्तों से इतना डरता हूँ कि कुत्ते के भौंकने से ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

एक बार संघ के सरसंघचालक बाला साहब देवरस ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "तुम प्रधान-मन्त्री से नहीं डरते और कुत्ते से डरते हो ?

एक दिन मैं वली का 'रोजनामचा' पढ़ रहा था कि सहसा ठहाका लगाने लगा। मेरे पास बैठे श्री बलवन्त राय तयाल ने पूछा कि क्या बात है ? जो

मैंने पढ़ा था वह बताया। एक बार महाराज बनारस राजकीय भेंट के सन्दर्भ मे नवाब रामपुर से मिले। महाराज को महल की दूसरी मंजिल पर ठहराया गया था। चूँकि बिना 'गो-माता' का दर्शन किये महाराज भोजन नहीं करते थे इसलिए रोज सवेरे पहला काम होता था कि एक गिर्री के सहारे एक गाय को बाल्कनी के बराबर चढ़ाया जाता। मेरा ख्याल था कि यह हास्यास्पद है, परन्तु तयाल साहब ऐसा नहीं सोचते थे। उन्हे भी लगा गो-माता के दर्शनों पर हँसने वाला मैं कैसा हिन्दू हूँ।

तयाल साहब ने इधर थोड़ी-सी 'चोटी' बढ़ा ली थी। पीलू साहब को वह बड़ी अजीब लगी लेकिन मुझे नही। मेरा ख्याल था कि रीति-रिवाज और प्रथाएँ एक समाज से दूसरे समाज के साथ बदलती रहती हैं। मन्दिर मे जाने के पहले हिन्दू जूते उतार कर सिर ढँक लेता है जबकि चर्च मे जाने के पूर्व इसाई जूते पहने रहता है पर हैट उतार लेता है। इसलिए किसी का भी मजाक उड़ाना गलत होगा।

लेकिन जनाब पीलू साहब कायल नही थे। मैंने यह कह कर उनका मुँह बन्द करना चाहा कि गांधी जी के भी तो छोटी-सी चोटी है। लेकिन पीलू भला क्यों मानते इसलिए पैंतरा बदलते हुए बोले, यदि चोटी का इतना ही माहात्म्य है तो खुद क्यों नही रख लेते ?

मैंने कहा, "मैं चोटी इसलिए नही बढाता क्योंकि मेरे पिता के भी नही थी। हो सकता है कि अपने आचार-विचार में सिंधी इतने हिन्दू न हों। लेकिन तब भी मैं चोटी का मजाक नही उडाऊँगा। हिन्दू धर्म मुझे चोटी न रखने की भी/स्वतंत्रता देता है पर साथ ही जो रखते हैं उनका मजाक भी न उडाऊँ यह भी आशा करता है।"

मुझे लगता है कि पीलू महाशय को तो सन्तुष्ट न कर सका, परन्तु बलवन्त राय जी को शायद मनवा सका हूँगा कि मैं इतना बुरा हिन्दू भी नही हूँ।

महीने गुजरे और पीलू छूटे लेकिन हजरत, बलवन्त राय जी की चोटी को नहीं भूल सके, क्योंकि जनवरी '७७ के अपने एक पत्र में जेल में मेरे दुर्बल होते जाने पर सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखा, "नववर्ष की मेरी शुभकामनाएँ। बदले में नववर्ष के उपहार के रूप में तुम चाहो तो बलवन्त राय की चोटी के कुछ बाल लिफाफे में रखकर भेज सकते हो।"

मैंने उत्तर में लिखा कि बाहर के अधिकांश साथियों के लिए जेल मे पीछे छूटे हम लोग 'दो पैरों वाले करमकल्ले' ही तो हैं। जहाँ तक उपहार की बात थी, मैंने लिखा, "अपने इच्छित उपहार के लिए मेरा ख्याल है कि और एक

वर्ष तक रुकना होगा क्योंकि तुम यहाँ कैंची छोड़ना भूल गये। कोई बात नहीं अगले साल तक और अधिक बढ जाने पर वह और भी उपहार योग्य हो जाएगी।"

और इस प्रकार कुछ समय के लिए यह चोटी-प्रकरण स्थगित हो सका।

गर्मियों की देर रात तक, सेन्ट्रल लान मे ईंटों से चिने एक मंच के बारे में चर्चाएँ की तथा श्री भैरोंसिंह के जयपुर के सम्मान में हमने मजाक में उसका 'हवामहल' नामकरण भी कर रखा था सिकन्दर साहब के पास बेशक सही, मगर बड़ी ही पुरलुत्फ कहानियाँ थी। जिन्हे वह जानते थे ऐसी एक मुस्लिम महिला ने अपने गुर्दे की पथरी, बिना अपने को खास छुवाये एक क्षण में ही साधू के द्वारा निकलवायी, जिसका एक लम्बा सा चिह्न एक ओर को बना रहा। लेकिन सिकन्दर साहब ने वह पथरी ज्यों की त्यों बाद में भी देखी।

बाबर के जीवन में दो बार परीक्षा की घड़ियाँ आयी, क्या यह आपको मालूम है? एक तो कोबरा साँप से लड़ाई और दूसरे भयंकर खुजली हो जाने पर भी न खुजलाने का संकल्प। सिकन्दर साहब ने बताया कि कोबरा से लड़ाई तथा पानीपत के युद्ध से भी भीषण थी खुजली।

भैरोंसिंह ने हमें बतलाया कि जोधपुर के एक गाँव की महिला से वह मिले हैं जिसने अपने पति की मृत्यु के बाद से गत तीस वर्षों में न कुछ खाया है, न पिया है। सिवाय इसके कि वह कुछ सप्ताहो के बाद मूर्छित हो जाती है। वैसे वह सामान्य रूप से सारे काम करती है।

जी हाँ, यह तो है कि हर दूसरे मिनट यदि मजाक करने की स्थिति नहीं है तो जगन्नाथ राव जोशी इसे समय की बरबादी समझते है। प्लैंशेट के विरुद्ध उनके पास बहुत मसाला है। जब कोई उनसे कहता कि वह भागवत, पुराण-कथा आदि बराबर क्यों सुनते हैं तो आप बगट्ट जवाब देंगे : "राजनीति पर पाबन्दी लग गयी, हो सकता है कि जीवन-निर्वाह के लिए कथा-वाचक का ही धंधा अपनाना पडे।" जब उन्होंने एक अकाली सांसद की बात बतायी कि संसद में एक बार वह बोले, "नेहरू ने नहरें खुदवायी, शास्त्री ने शस्त्र चलाये, इन्दिरा ने इन्द्री कटवायी"—और जोशी इस पर हँसते ही रहे, हँसते ही रहे।

मधुमेहियों के अलावा बाकी सब मजे से मिठाइयाँ उड़ाते। समर दादा और श्याम बाबू दूसरो से कही अधिक हाथ मारते। एक बार मिठाई की मात्रा शायद सीमित थी। श्याम बाबू ने थोड़ी ली और अपनी प्लेट में रख ली। तत्काल बोस ने उनकी प्लेट माँगी, ताकि उसमे कुछ और रख दें, लेकिन श्याम

बाबू कोई जोखिम नही उठाना चाहते थे, क्योंकि क्या पता कि जो थोड़ी-सी मिठाई उनकी प्लेट मे थी उसे भी बीजू न ले ले। तो साहब, मिठाई वाला लड्डू हाथ में ले लिया और खाली प्लेट बीजू साहब के नजर की। सब हँस पड़े। सिर्फ श्याम बाबू को छोड़ कर।

दादा नहाने तभी जाते थे जब सब लंच के लिए बैठ जाते। बहरहाल उन्हे जल्दी बुलाने का सिद्ध नुस्खा था कि उन्हे बताया जाए कि रसगुल्ला या मछली परसी जाने को है। डाक्टरों ने उन्हे चीनी की मात्रा मे कमी करने को कह रखा था। लेकिन रसगुल्लों को तो अपवाद होना ही था। वह श्री रामकृष्ण परमहंस की बात सुनाया करते कि रसगुला तो राज्यपाल है, क्योंकि उसके लिए जैसे सारा यातायात मार्ग दे देता है उसी प्रकार दूसरे सारे खाद्य पदार्थ रसगुल्ले के लिए मार्ग बना देते है।

जैसे ही २६ जून १९७६ आने को हुआ कि सारे बन्दियों ने उस दिन उपवास रखने का निश्चय किया। जैसे ही कुछ अधिकारियो को इसका पता चला तो उन्होंने एक सन्दिग्ध बन्दी के द्वारा खीर की दावत का प्रबन्ध करके उपवास तुड़वाने की कोशिश की। उन्होने इस बन्दी के लिए जेल के भण्डार से मुफ्त सामान और जलावन आदि का प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने कुछ बन्दियो से अपनी निकटता के आधार पर इस दावत में शामिल होने के लिए आग्रह भी किया। यदि वे अपने प्रयत्न में सफल हो जाते तो अपने वरिष्ठ अफसरो के द्वारा निश्चय ही शाबासी प्राप्त करते। लेकिन अधिकारियों के द्वारा इस सामूहिक उपवास को विफल बनाने की चेष्टा का इतना विरोध हुआ कि दावत का आयोजन धरा का धरा रह गया, लगभग सभी ने उपवास किया।

सरकार द्वारा इमरजेंसी मे हुई 'उपलब्धियो' पर बड़ा मजाक होता रहा। ऐसा लगता है कि इस इमरजेन्सी की एक मात्र 'उपलब्धि' शासक दल के लिए यही थी कि सत्ता और सम्मान की 'बेड़ियो' से मुक्ति। जबकि बन्दियों को इस इमरजेंसी में एक मात्र 'उपलब्धि' यही रही कि उनके टेलीफोन कभी खराब नही हुए। टेलीफोन को बीच में ही सुनने को उत्कटता ने ही टेलीफोनो को कभी खराब नही होने दिया। हर बार फोन करते हुए या सुनते हुए आप को पता चल पाता था कि टेप किया जा रहा है।

इमरजेंसी के शिकार व्यक्तियों को जो लाभ हुए उनके बारे मे कभी उन्होंने सोचा भी नही था। राजनीतिक विरोधियो को एक साथ बन्द कर सरकार ने एक कर दिया। इमरजेंसी के पूर्व पार्टियाँ धीरे-धीरे पास आ रही थी। जेल ने प्रेशर-कुकर का काम किया। कुछ ही महीनो वे लोग भी, मुझे स्वीकार करना

चाहिए कि उनमे से मैं भी एक हूं, जो 'मन्द तेजी' वरत रहे थे, इस पर आमादा हुए कि विलय यहाँ और तत्काल अभी।

निश्चय ही यह सब ब्रिटिश सरकार द्वारा आई० एन० ए० के उन तीन अफसरों—एक हिन्दू, एक सिख और एक मुसलमान—के सम्मिलित मुकदमे की स्मृति-सा था, जिसने आई० एन० ए० के मामले मे देश को एक बना दिया था फलतः सरकार की इच्छा असम्भव ही रह गयी। विभिन्न दृष्टिकोणों और रायो के लोगों को एक साथ रखकर सरकार ने सहायता की कि वे लोकतन्त्र की रक्षा के हेतु अपने-अपने कोणों को घिस डाले।

कई जगहो पर इस अनुभव से मार्क्सवादी विशेष रूप से प्रसन्न थे। उस समय तक लोकतन्त्रीय विरोधियों को वे 'पूंजीवादी' नाम धरते थे, परन्तु इस बार वे अधिक समझ सके। वे बोले, "हमें पता ही नही था कि जनसंघ में इतने अच्छे लोग हैं।" मुसलमानो का फिरका अलग ही था जिसे जेल के अनुभवो से सुखद आश्चर्य हुआ। जब उन्होने राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ के कार्यकर्त्ताओं को निकट से देखा तो वे उनके सबसे बडे प्रशंसक हो गये। दिल्ली मे वे भोजन के समय श्लोक-पाठ में आगे बढ़कर हिस्सा लेने लगे।

हर जन-आन्दोलन में अवसरवादी और कमजोर तत्त्व घुस आते है। कुछ तो जे० पी० के आन्दोलन में भी घुस गये। इमरजेन्सी ने कठोर कसौटी का काम किया। उसने ऐसे सारे तत्त्वों को छाँट दिया जो तेजी से 'बीस सूत्रीय' हो गये थे। इस अग्नि-परीक्षा ने जनता आन्दोलन का बहुत सारा कूड़ा-करकट छाँट दिया।

दरबारियों और गणिकाओं के द्वारा गगनभेदी स्वरो में 'महिमामण्डित माता जी' की विरुदावली का गान समझा जा सकता था लेकिन "वह नक्षत्रों की ऊँचाई तक पहुँच चुकी हैं, वह स्वयं नक्षत्र बन गयी हैं"—हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय जैसे कलाकार की उस उक्ति की क्या सफाई हो सकती है? इससे वितृष्णा होती है। इससे मुझे महारानी एलिजाबेथ के बारे में सर वाल्टर रेले का कथन याद आया, "वह वीनस की भाँति चलती हैं, डायना की भाँति मृगया करती है, सिकन्दर की भाँति अश्ववाही है और देवदूतों की भाँति गाती है।" अतः मन्नाते हुए मैंने एक तर्रार-सा पत्र यह लिखकर भेजा।

"और अब मैंने तुम्हारी 'नक्षत्री' की विरुदावली पढ़ी। नही कह सकता कि यह तुम्हारी पार्टी की नीति है या कवि-कल्पना या और कुछ। जो हो, पढ़ने के लिए खासी दिलचस्प है। शायद बन्दियों के मनोरंजन का यह तुम्हारा अपना ढंग है। यदि ऐसा है, तो धन्यवाद; बहुत-बहुत धन्यवाद!!"

इमरजेंसी के दौरान सारे अखबार गैर-अखबारी हो गये थे। जो चीज आकर्षित करती थी वह थी 'एक्सप्रेस' में अबू के कार्टून और 'टाइम्स आफ इंडिया' का जन्म और मृत्यु वाला कालम। आकाशवाणी तो मसखरों का कुंदा हो गया था। 'आलइंडियो रेडियो' तो बहुत पहले से 'आल इंदिरा रेडियो' हो चुका था, पर अब वह 'एन्टी इंडियन्स रेडियो' भी हो गया था। आकाशवाणी, पातालवाणी भी बन गया था। जैसा कि जेल में कई बार चौधरी चरण सिंह ने कहा है : "दुनिया मे कही पर भी प्रधानमंत्री झूठ नही बोलता, परन्तु यहाँ प्रधानमंत्री ही सिर्फ झूठ बोलता है।" और उनकी इन झूठों को चापलूस रेडियो 'खबरें' कहकर प्रसारित करता है।

अतः इस बीच नेताओं और बन्दियों, मजदूरों और किसानों के लिए भी समाचारों के लिए बी० बी० सी० ही एकमात्र स्रोत था। हममें से कुछ तो खबरों के लिए यह शर्त लगाकर आकाशवाणी खोलते थे कि देखना पहला ही शब्द होगा 'प्रधानमंत्री', और हम हमेशा जीतते थे। अपने देश के रेडियो के बजाय विदेश के रेडियो का विश्वास, इस बात का प्रमाण था कि यह सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय अविश्वास व्याप्त है। यह सन् १९७१ के पूर्व पाकिस्तान की जैसी हालत थी, जिसमे बंगाली अपने स्वाधीनता-आन्दोलन की खबरों के लिए पाकिस्तान रेडियो के बजाय बी० बी० सी० लगाते थे। यदि इस सारे काल मे कोई एक पत्रकार पुरस्कार के योग्य है, तो वह हैं बी० बी० सी० के रत्नाकार भारती।

* * *

८

• विचार-अनुष्ठान

नाश्ता, लंच और भोज के बाद नित्य गोला बनाकर हम बैठते और गप लड़ाते। दिन में तीन बार सम्पन्न होने वाली इस गोलमेज-सभा के द्वारा मनोरंजन तथा सूचनावर्धन दोनों ही होते थे।

एक दिन अखबारों ने छापा कि इमरजेन्सी ने हड़तालों पर जो पाबन्दी लगायी उससे इतने 'मेन-आवर्स' की बचत हुई। एक आँकडेजीवी मित्र ने चिपकाते हुए कहा, "और उस हानि का क्या जो एक लाख वयस्को को एक वर्ष तक बन्दी बनाकर रखने से करोड़ों 'मेन-आवर्स' की हानि हुई ?"

फिर किसी समय प्रेस ने प्रकाशित किया कि १३१३ करोड़ रुपयों का काला धन प्राप्त किया गया। किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह आँकड़ा १३ की अशुभ पुनरावृत्ति ही केवल नही था। सीधे करों के सम्बन्ध मे वांचू कमिटि की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक वर्ष काले धन की यह हेराफेरी ७००० करोड़ रुपये तक बढ जाती है। 'इकनामिक टाइम्स' के श्री रागणेकर के अनुसार यह संख्या १४००० करोड़ तक पहुँचती है। इसलिए सरकार को जो प्राप्त हुआ वह तो मुँह-धुलाई है।

अशोक जी ने हमे बताया कि उनके मंत्रित्वकाल में तेल और खनिजों के बारे में ईरान, अल्जीरिया आदि से अनेक प्रस्ताव आये थे जिन्हे सरकार ने तब नामंजूर कर दिये थे। समय और धन की अपार हानि हो जाने के बाद उनमें के कई आफर अब स्वीकार किये जा रहे हैं।

एक दिन अखबारों ने जयपुर में ३०० करोड़ रुपयों के स्वर्ण-खजाने की आसन्न खोज का समाचार दिया। बहरहाल प्राप्त कुछ नही हुआ। बताया यह गया कि अमूल्य अलंकारों का अधिकाश भाग 'सम्मानितो' के दूतावासीय संरक्षण में पहले ही देश से बाहर जा चुका है। कितना अच्छा होता कि दिल्ली, बम्बई

आदि स्थानों पर यदि हमने पहले ही प्रदर्शन के लिए राजाओं के 'आभूषण महल' स्थापित कर दिये होते। ये मुकुट-मणियाँ, सम्पदा और सौन्दर्य सभी श्रेष्ठ होती। इस सम्पूर्ण सम्पदा का सरकार बीमा भी करा सकती थी। त राजा लोग भी उन रत्नों को बेच सकते थे जिनका कोई ऐतिहासिक मूल्य न था। इस प्रकार की किसी योजना के द्वारा राजाओं में गर्व और देशभक्ति व भावना को अंकुरित किया जा सकता था और उन्होंने भी इन महलों मे सप्रस अपने अलंकार प्रदर्शित किये होते।

बातें घूम-घूम कर मैडम पर ही केन्द्रित हो जाती थीं। वह कहती हैं उनके पिता भिन्न प्रकार के व्यक्ति थे, वह एक 'सन्त' थे। क्या वह यह कह क स्वीकार रही थी कि वह पापी है?

मैंने एक बार जानना चाहा कि १६६६ के 'आर्गेनाइजर' मे 'कितनी खूंखा होती हैं स्त्री प्रशासिकाएं' शीर्षक से दिलचस्प लेख किसने लिखा था? चूंकि अ वह स्वर्गीय हो गये हैं, अतः उद्‌घाटित कर सकता हूं कि उक्त लेख सुभाष च बोस के पुराने साथी तथा लम्बे समय तक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय अन्तर्राष्ट्रीय मामलो के प्रोफेसर डाक्टर गिरिजा मुकर्जी का था।

मजेदार बात तो यह है कि स्वयं स्त्री-प्रशासिकाओं ने भी इस उच्च-प के लिए अपनी अयोग्यता अनुभव की। उदाहरण के लिए चीन की अन्तिम सम्रा त्जू-हसी (Tzu-Hsi) ने इस शताब्दी के दूसरे दशक में अपनी मृत्यु के पूर्व का कि चीन के इस 'ड्रेगन-सिंहासन' पर 'फिर' किसी स्त्री को नही बैठना चाहिए जो कुछ घटित हुआ उस सब के बाद क्या पता इन्दिरा जी भी इसी नतीजे प पहुँचे। दिलचस्प तो यह है कि उन्होंने अपने को हमेशा ही 'जोन आफ आर्क का भारतीय सस्करण समझा। एक मित्र ने बताया कि मैडम भूलती हैं कि जोन को एक चुडैल घोषित करके खूंटे से बाँध कर जला डाला गया था। और जैसा कि हुआ, कि मतपत्रो की पेटियों मे इस भारतीय जोन को भी जीवित ही भून डाला गया।

नेपोलियन उनकी दूसरी ग्रन्थि है। वह नेपोलियन की ही भाँति प्रसिद्धि चाहती थी। बेशक वह कही भी नेपोलियन के पास तक न फटक सकी है, सिर्फ भारतीय प्रेस के गला घोंटने के अलावा। संयोग से नेपोलियन की वही सबसे बड़ी अकेली गलती थी, इसमे रूस आक्रमण को अलग नही किया जा रहा है। नेपोलियन जानता था कि पेरिस-प्रेस के उन्मुक्त रहते वह एक डिक्टेटर के रूप मे 'एक सप्ताह के लिए भी फ्रास पर शासन' नही कर सकता था। इसीलिए उसने पूर्ण सेंसर मे उन्हें बाँध दिया। अपनी किसी योजना को आरम्भ करने के

पूर्व वह सम्पादकों, अभिनेताओं और कलाकारों को बुलाता और उनसे कहता : "केवल मुझे ही उद्धृत करो...मेरे गीत गाओ, मेरी प्रशंसा का गुणगान करो, मुझे चित्रित करो...मैं तुम्हे तुम्हारे मूल्य पर क्रय करूंगा, तुम्हारा खरीदा जाना जरूरी है।"

उन्होंने फिर वही सब किया लेकिन उसके बाद फ्रेंच अखबार मुश्किल से ही पठनीय रहे। हर हालत में उनमें कोई समाचार नही हुआ करते थे। विश्व-समाचारों की जानकारी के लिए अंग्रेजी और जर्मन पत्रो की तस्करी करनी होती थी। जहाँ तक फ्रेंच पत्रों का सवाल था, उसका कथन होता; "चलता करो इन्हें, ये सब वही कहते-सुनते हैं जो कि उनकी समझ से मुझे खुश करेगा।"

कई फ्रांसिसी बेचारों को तो कभी मालूम ही नही हो पाया कि ट्रेफलगर की लड़ाई में उनकी हार भी हुई थी। यह वैसा ही था कि लाखो भारतीयों को तुर्कमान-गेट के जनहत्या-काण्ड के बारे में कभी कहा ही नही गया। इन दोनो ही उदाहरणों मे समाचारों पर पावन्दी के कारण जनता से अधिक डिक्टेटर ही आहत हुए।

तुर्कमान-गेट से मुझे याद आया कि इस दुर्घटना के थोडे दिन बाद मुसलमान नेताओं का शिष्ट-मण्डल राष्ट्रपति से मिलने गया। जनता पर हो रहे अत्याचार की उन्होंने शिकायत की। राष्ट्रपति ने अवशता प्रकट की कि वह क्या कर सकते है। इस पर एक आगन्तुक उठ खडा हुआ और बोला, "आप एक काम तो कर ही सकते थे।"

"क्या ?' राष्ट्रपति ने पूछा।

"जहर तो आप खा ही सकते थे।" भन्नाते हुए आगन्तुक बोला।

जब पुत्र ने साम्यवाद विरोधी बातें शुरू की तो स्वतंत्र पार्टी के एक नेता ने सोचा कि यह अब समझदारी की बातें कर रहा है। लेकिन मेरी प्रतिक्रिया थी, "वह समझदारी की बातें स्वतः नहीं कर रहा है बल्कि उसने हमारे कुछ विचार हड़प लिये हैं।"

एक मित्र ने रहस्योद्घाटन करते हुए बताया कि मारुति को लाइसेंस दिये जाने वाली लाइसेंस कमिटी की बैठक संजय के शयन-कक्ष में सम्पन्न हुई थी। इसलिए कि यह आशा की जा रही थी कि वह बीमार है।

जब बरुआ ने इन 'श्रीमान' को आधुनिक विवेकानन्द कहकर भूषित किया तो सामान्य प्रतिक्रिया यही थी कि यह विवेकानन्द-विरोधी उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार कि इंदिरा गांधी, गांधी-विरोधी है। आप ही वह सज्जन थे, जिन्हें यह

शिकायत थी कि लड़कियाँ उनकी रैलियों में नहीं शामिल होती हैं। लेकिन इन्हे लडकियों की क्यों आवश्यकता है ? और लड़कियाँ इनसे क्यों भड़कती हैं ? सच तो यह है कि सिंहासन के इस छद्मकामी के चरित्र को उद्‌घाटित करने वाले ये अर्थपूर्ण शब्द थे। शॉ का कथन ठीक ही था, "प्रधानमंत्री के कोई संतान नहीं होनी चाहिए।"

विलय के बारे में प्रायः हम विचार-विमर्श करते। जनसंघ किस प्रकार *संगठन कांग्रेस के साथ विलय करे, जो कि कल तक कांग्रेस मे ही थी तथा जिसने* बराबर लानत-बरामत भेजी। मैंने कहा कि बहुत सरल है। जनसंघ ने कांग्रेस की निन्दा उसकी भ्रष्टता के लिए ही तो की थी। कांग्रेसियों को इससे क्या लेना-देना ? सन् १९७४ मे बिहार प्रदेश कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री सीता राम केसरी ने मुझसे कहा था, "कांग्रेस मे जितने जनसंघी है उतने तो जनसंघ मे भी नहीं होंगे।"

शुरू के सन् ५० मे कांग्रेस कार्यकारिणी समीति एक प्रस्ताव के द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक सघ के कार्यकर्त्ताओं को कांग्रेस मे शामिल होने का आमंत्रण दिया गया था। वह तो नेहरू थे जिन्होंने लन्दन से लौटने पर इस प्रस्ताव के विरुद्ध अभिमत दिया था। अतः मैंने कहा कि संगठन कांग्रेस और जनसंघ के एक होने का तात्पर्य है कि कांग्रेस के उस पुराने प्रस्ताव को हम आचरित कर रहे हैं।

दिल्ली और अन्य स्थानों से भवन-विध्वंसों के समाचार आये। लगा कि सारे शहरो में भूकम्प आया हुआ है। मालूम हुआ कि जैसे दिल्ली में करौल बाग पर बममारी हुई है। अपने शरीर के बाद आदमी अपनी जगह से ही जुड़ा होता है। हमें कोई शक नही था कि लोगों के शरीरों का उच्छेदन करके तथा घर और कार्यस्थलो को गिराने की हरकत करके सरकार आत्महत्या ही कर रही थी।

एक दिन खबर आयी कि 'गिरजाघर विश्व-परिषद्' के अध्यक्ष श्री पॉटर ने भारतीय इमरजेंसी की निन्दा की है और नागरिक स्वतन्त्रताओं की पुनर्स्थापना की माँग की है। इससे हमें प्रसन्नता हुई। और हम आशा करने लगे कि 'विश्व मुस्लिम परिषद्' भी इसी प्रकार का कोई कदम उठाये। लेकिन ठीक तो है, बादशाहो और तानाशाहो द्वारा नियोजित संगठन से ऐसी आशा करना बहुत अधिक था। लेकिन सरकार इस बारे मे पूर्ण संकल्पि लग रही थी। दिल्ली, मुजफ्फर नगर आदि में मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध जैसा छेड़ कर सरकार ने उन्हें उससे कही अधिक विमुख, उदासीन बना दिया जितना कि इमरजेंसी के विरुद्ध विश्व मुस्लिम निन्दा के द्वारा होता।

एक दिन भारत और चीन के इतिहासों की भिन्नता के बारे में बातें चल पड़ीं। चीन में सदा से ही केन्द्रीय सरकार का ही सर्वत्र शासन रहा जबकि भारत में इसका अपवाद ही रहा। क्यों ? एक विश्वसनीय स्पष्टीकरण तो यह कि चीन में दो बड़ी नदियाँ हैं, जबकि भारत में एक दर्जन से अधिक। हमेशा से नदियाँ विभिन्न उपसंस्कृतियों को शरणस्थली रही हैं, साथ ही स्वतंत्र शक्तियों की केन्द्र भी। एक बात और, वह यह कि एक हजार वर्ष पूर्व से चीन की यांगत्सी और हाग-हो दोनों बडी नदियाँ एक नहर से जुड़ी हुई हैं। भारत में कोई दो नदियाँ इस प्रकार नही जुड़ी हैं। और चूँकि चीन में दो बड़ी नदियाँ हैं इसलिए दो संस्कृतियाँ भी हैं और पीकिंगी तथा केन्टोनी दो भाषाएँ भी। इन दोनों भाषाओं के बीच चित्र लिपि ने सेतु का काम सम्पन्न किया है। जहाँ तक एक भाग में 'चा' (अर्थात् चाय) और दूसरे हिस्से में 'टे' (अर्थात टी') के लिखे जाने की बात है तो उसके लिए दोनों एक ही चिह्न प्रयोग में लाते हैं। भारत को न तो एक लिपि और न ही कुछ भाषाएँ प्राप्त हैं।

फिर भी इन सारे युगों में अपने विकेन्द्रित स्वरूप में भी भारत चीन के केन्द्रित स्वरूप से कोई खास खराब नही सिद्ध हुआ।

एक दिन हम सब मनोरंजन-कक्ष में बैठे हुए थे। सिकन्दर भाई सरस्वती के चित्र का सामना करते बैठे थे। मेरी ओर मुड़े और पूछा, "इन चार हाथों का क्या मतलब है ?"

मैंने कहा कि मैं ललित-कला-शास्त्र का पंडित नहीं हूँ। लेकिन फिर भी सरस्वती के चार हाथों या काली या किसी अन्य देवी के बीसियों हाथों से मतलब है उक्त देवी की अतिमानवीय शक्तियों का प्रदर्शन। ये सारे चित्र शरीर अंकित उतना नही करते जितना कि हमारी मानसिकता और दर्शन की काव्यात्मकता से परिचिति।"

एक दूसरे मित्र ने बताया, चित्र, फोटोग्राफ नही होता। चित्रित विषय, कलाकार के अभ्यन्तर महत्त्व को प्रस्तुत करता है। एक आधुनिक चित्रकार ने एक बार कहा था कि वह घास को खूब हरी, खूब ही हरी दिखाना चाहता था इसलिए उसने हरेपन की पूर्णता को लाल चित्रित कर डाला।

जब प्राचीन कलाकारों ने लक्ष्मी को उल्लू पर बैठा हुआ अंकित किया तो उनका मतलब तथ्यपरक या शब्दपरक नही था, क्योंकि उल्लू पर कोई बैठ ही नही सकता है। इस सबके द्वारा कलाकार यही व्यक्त करना चाहता था धन, उल्लू की भाँति अन्धा होता है। इसी प्रकार सरस्वती के वाहन हंस की दुग्ध-धवलता का तात्पर्य भी कला की पवित्रता से है। जिसकी कि वह देवी है।

एक तीसरे सज्जन ने जोड़ा, "शायद शक्ति के प्रतीक का प्राचीन मध्य एशिया के इस विम्ब से अच्छा उदाहरण नहीं हो सकता जिसमें मनुष्य का सिर, सिंह की देह और पक्षियों के पंख प्रदर्शित किये गये हैं। यह उस आदर्श-पुरुष को व्यक्त करता है जिसके पास सिंह-सा पराक्रम है, मानवीय मेधा है और पक्षियों जैसी शारीरिक तथा मानसिक उड़ान है।

एक दिन हम लोग खुले में बैठे थे। पार्टियों के विलय की दिशा में प्रगति के बारे में कोई खबर नही थी। अशोक जी बोले, "हमें तर्कों से अधिक संकल्प की आवश्यकता है। तीस, चालीस, पचास प्रमुख विरोधी नेता लें यह शपथ कि तूफान आये, आँधी आये, आसमान फट पडे पर हम सब मिलकर एक नयी पार्टी बनाते हैं और उसके लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं और तब देखिए कि सब ठीक हो जाता है।

और हम सब उनसे सहमत थे।

जब इमरजेंसी महीना, दर महीना, दर महीना बनी रही और लगा कि लोगों ने जैसे हथियार डाल दिये है तो यह सवाल उठा कि क्या हमारी कोई स्वाधीनता की परम्परा थी भी? कइयों ने सोच लिया कि हम तो एक तावेदार कौम हैं जिसका काम है निरंकुश के सामने झुके रहना भले ही वह ग्रीक, सीथियन, मगोल, तुर्क, ब्रिटिश या नेहरू कोई क्यों न हो; लेकिन जो मित्र भारतीय इतिहास से अपेक्षाकृत अधिक परिचित थे उनका विचार भिन्न था। उनका कहना था कि मानवीय स्वातन्त्र्य के लिए निरन्तर संघर्ष करने का भारत का अपना इतिहास रहा है। भारत मे विरोध का स्वर सबसे अधिक मुखर रहा है।

राजनीतिक तथा आर्थिक प्रश्नो के उठने के बहुत पहले ही धार्मिक समस्याएँ प्रमुख हो चुकी थीं'। लेकिन उस विगत संसार ने ईश्वर की परिकल्पना के लिए मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। उन्हे भी जो निष्ठापूर्वक ईश्वर की सत्ता मे विश्वास नही रखते थे, ऋषियों का आदर प्राप्त था। मानव जाति के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में स्पष्ट उक्ति है, "हम कहाँ से और क्यो?" और समाप्त करते हुए कहा, "भगवान् ही जानता है, सम्भव है, वह भी जानता है कि नही।" वैदिक ऋषियों का वचन है कि देवताओ का उद्भव मनुष्यो के बाद ही हुआ।

वाणी और विचार की स्वतंत्रता उस प्राचीन समय में सामान्य बात थी। धर्म द्वारा शासित सभा और समिति का महत्त्व, मुकुटधारी, खड्गवाही सम्राट् से कही अधिक था। ऐतिहासिक युगों तक मे वैचारिक स्वतत्रता इतनी प्रतिष्ठापित तथा प्रभावशाली थी कि सिकन्दर के आक्रमण के विरोध को संगठित करने मे दार्शनिकों ने नेतृत्व किया। यह आक्रमणकारी, जो कि वैसे दार्शनिकों का सम्मान

ही करता था, इतना खीझ उठा था कि उसने सारे दार्शनिकों को बन्दी बना डाला था। कुछ की तो हत्या कर डाली गयी और ज्ञानार्जन के हेतु कुछ को ले गया।

राज्याभिषेक के अवसर पर राजा की धर्म-विधान की अधीनता पर बार-म्बार जोर दिया जाता था। राजा तीन बार कहता कि वह समस्त दण्ड-विधान से ऊपर है—'अदण्ड्योस्मि !!, और हर बार पुरोहित धर्मदण्ड से उसके सिर पर प्रहार करते हुए कहता कि धर्मदण्ड तुम पर अनुशासन रखेगा—'धर्मदण्ड्योसि !!' इस वास्तविकता को स्वीकारने के उपरान्त ही वह अभिषिक्त सम्राट् माना जाता था।

हाँ, महाभारत में यह प्रतिपादित किया गया कि यदि राजा धर्म का उल्लंघन करता है तो उसे पागल कुत्ते की भाँति मार डाला जा सकता है।

रामायण और महाभारत में सभी पूर्ण स्वतंत्रता से बातें तथा व्यवहार करते हैं। दुर्योधन के काका विदुर और भाई युयुत्सु ने कौरव-सभा में हुई द्रौपदी की अवमानना की भर्त्सना की थी। लेकिन तब भी दुर्योधन ने न तो उन्हें चुप कराने के बारे में सोचा और न ही कारागार में डाला। अपनी आत्मा के विवेक से निर्देशित होकर दुर्योधन का भाई युयुत्सू जब पाण्डवों के पक्ष में चला गया तो 'दलबदलू'' कहकर उसकी वैसी भर्त्सना तो नहीं की गयी जैसी कि 'आल इंदिरा रेडियो' ने बाबू जगजीवन राम की। इसी आधार पर रावण ने भी विभीषण की प्रताड़ना नहीं की।

रामायण में सीता के लंका-वास पर एक धोबी ने भी अपनी प्रतिक्रिया स्वतंत्र होकर व्यक्त की परन्तु राम ने तो उसे किसी तरह दण्डित नहीं किया।

राजनीति की दरारों के बारे में चाणक्य ने विस्तार से विचार किया है। गुप्तचरों के बारे में वह बहुत कुछ बताते हैं। लेकिन सेंसर के द्वारा लोगों के ओठों को सिल दिये जाने का उनके यहाँ भी कोई उल्लेख नहीं है। यह प्रतिष्ठापित था कि वाणी-स्वातन्त्र्य एक नागरिक मूलाधिकार है। वाणी की यह स्वाधीनता निश्चय ही कला और विज्ञान पर लागू थी। जब कि 'आधुनिक' इंगलैण्ड डी० एच० लारेंस के 'लेडी चेटर्लीज लवर्स' पर प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व पाबन्दी लगाती है और सन् ६० में जाकर उसे वापस लेती है, परन्तु भारत में कोई भी तो 'कामसूत्र' या खजुराहो को विकृत नहीं मानता। ये काम के बारे में सीधे-सीधे कला और शास्त्र भर हैं।

प्राचीन मनुष्य जीवन के किसी पक्ष और किसी अन्तर्दृष्टि से भयातुर नहीं था। प्रकृति मात्र मनुष्य से लेकर कृमि-कीट तक रहस्यमय थी जिसे उसने पवित्र

भावना से उद्घाटित किया। सारा ज्ञान, दर्शन था सत्य का एक साक्षात्, जैसा कि ईश्वर।

न ही मुस्लिम शासन के समय यह विरोध समाप्त हो गया था। मुस्लिम कुशासन के विरुद्ध हिन्दू जनता का प्रतिरोध सर्वविदित ही है। लेकिन मुस्लिम कुशासन के विरुद्ध मुस्लिम प्रतिरोध जिसको ज्यादा जानकारी नही, सर्वथा नही हुआ, यह यथार्थ नही है। यदि बादशाह की तारीफ मे 'कसीदा' सामान्य बात थी तो एक बुरे बादशाह की काव्यात्मक निन्दा 'हिज्वा' भी बहुत असामान्य न थी। समाज ने इन सबको मान्यता दे रखी थी कि ये सब कवि की रचनात्मकता के अग हैं। एक हिज्वा मे फिरदौसी ने महमूद गजनी की निन्दा की है और वह शाहनामा में सम्मिलित है।

भारत पर आक्रमण करने वाले मुहम्मद गोरी को हम सब जानते हैं। लेकिन उसका छोटा भाई हुसैन शाह भी था जो दिल्ली में बस गया था और जिसने संस्कृत सीखी थी। जब उसके भाई ने भारत पर आक्रमण किया तब उसने दिल्ली और उसके पास के रहने वाले मुसलमानो की दस हजार की एक सेना खड़ी की और पृथ्वीराज के साथ कंधे से कधा मिला कर भाई के विरुद्ध युद्ध किया। भारत के लिए लड़ते हुए ही उसने प्राणोत्सर्ग किया था।

१३वी शती के पूर्वी उत्तर प्रदेश ने मेहदवी नाम से एक सुधारवादी आन्दोलन को जन्म दिया। बलबन और अलाउद्दीन की पुराणपंथिता से युद्ध करते हुए हजारों मेहदवी मारे गये। निजामुद्दीन औलिया ने सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक के कुशासन की आलोचना की थी। तुगलक की धर्मान्धिता और नृशसता के विरुद्ध हाजी मुल्ला ने विद्रोह किया था। उसकी हत्या कर दी गयी और उसके सिर को दिल्ली की गलियों-सड़कों पर उछालते हुए ले जाया गया था। इतिहासकार काफी खान ने औरंगजेब की मूर्खताओं और अपराधों का भण्डाफोड किया है। उदार सूफी सन्त सरमद, औरंगजेब के लिए इतने सरदर्द हो गये थे कि उसने उन्हें मरवा डाला था।

१६वी शती के आरम्भ मे खाँटी मुसलमान 'अहले हदीस' ग्वालियर के साथ मिल गये थे, ताकि ब्रिटिश राज यहाँ से खत्म किया जा सके। ये लोग कभी अमीरों से धन नही लेते थे बल्कि साधारण घरों से जा-जाकर मुट्ठी भर आटा जमा किया करते थे। एक शती बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए इसी मुट्ठी प्रथा को 'मुष्टि-दान' के रूप में—प्रयुक्त करने के लिए सिफारिश की थी।

औरंगजेब की रोबीली उपस्थिति के बाद भी शिवाजी, मुगल-दरबार मे अपने को नही रोक सके थे। जबकि समस्त सेना विनष्ट कर दी गयी थी तब भी उसी औरंगजेब को गुरु गोविन्द सिंह ने अपना विद्रोही 'जाफर नामा' (स्वतंत्रता की घोषणा) सम्बोधित की थी। इस प्रकार न केवल प्राचीन भारत में ही, बल्कि मध्ययुग में भी स्वाधीनता की परम्परा शानदार रही है। और तब स्वतन्त्रता की अपनी ही परम्परा लिये अंग्रेज आये।

एक दिन, कानून की सीमातीत अवज्ञा के बारे मे चर्चा चल पड़ी। एक मित्र बोले, "जब एक बार कानून बन गया तो सबको उसको स्वीकार करना चाहिए तथा पालन भी।"

जो हो, कोई उनसे सहमत नही हुआ। सुरेन्द्र मोहन बोले, "जिम्मेदार पार्टियाँ कानून की अवज्ञा यो ही नहीं करती हैं, लेकिन यदि कुछ लोग यह समझते हैं कि कोई विशेष कानून गैर-कानूनी या अनैतिक है तो उन्हे उसकी अवज्ञा या उल्लंघन का अधिकार है।"

मेजर जयपाल सिंह बोले, "आदमी मजाक के लिए कानून की अवहेलना नही करता है। ऐसा वे तभी करते हैं जब उसके बारे में उनकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है और इसके लिए वे कोई-सा भी मूल्य चुकाने के लिए तैयार रहते हैं, स्वेच्छा से जेल-यातनाएँ भोगते हैं।"

एक दूसरे मित्र ने कहा, "बलात अर्जित बहुमत के द्वारा पारित सभी कानूनों का अनुपालन करने के लिए विरोधी बाध्य नही हैं। 'ताजिराते हिन्द' से बड़े कानून इस दुनिया में है। अगर प्रचलित कानूनों के पालन का सिद्धात अटल होता तो फिर कोई गाँधी पैदा नही हो पाता, न सत्याग्रह होता और न ही स्वाधीनता आन्दोलन कही होता।"

लोगो को ताज्जुब था कि देवी जी ने चुनाव करवाने का क्यो निश्चय किया? वैसे तो अनेक कारण थे, लेकिन दूसरे कारणों से अधिक यह कि उन्होंने चुनाव का निर्णय इसलिए लिया कि वह जानती थी कि चुनाव करवाने ही होगे। जब एक लाख लोगों को जेल में ठूंस दिया, तो उन्हें बदनाम किया, सेंसरशिप लगायी, अखबार बन्दी की, प्रेसों में ताले पड़े, सम्पादकों तक को गिरफ्तार किया गया तथा प्रेस-कौंसिल बन्द कर दिया गया, ताकि १०, जनपथ, जो कि आदरणीय लालबहादुर शास्त्री का सरकारी आवास था, अपने पुत्र की 'युवा कांग्रेस' को दिया जा सके। उन्होंने देखा कि रौलट-एक्ट, जिसका निर्माण अंग्रेजों ने अपनी सबसे क्रोधपूर्ण मनःस्थिति मे किया था, परन्तु वह भी मीसा की तुलना मे उतना घातक नही था, एक बार भी तो प्रयुक्त नही हुआ था। देवी जी के चरित्र के

द्वारा सीमातीत आचरण होते देखकर लोग आश्चर्य चकित थे। वह जानती थी कि वह एक ज्वालामुखी पर बैठी हुई हैं। मैडम को अपनी हत्या का इतना भय था कि कैप्टन और उससे ऊँचे ओहदे के सैन्य अधिकारियों की देखरेख में घिरी रहने लगी। घबराये हुए बेचारे अफसरों ने आर्मी-क्लबों मे पीना-पिलाना छोड दिया कि कही नशे में उनके मुँह से कुछ निकल न जाए। कुछ ने तो क्लबो से मुँह ही मोड़ लिया। मैडम को सारी बात पता थी और उनका भय भी उसी मात्रा में बढता जाता था। यदि वह विस्फोट से बचना चाहती थी तो उनके मनोनुकूल समय पर चुनाव करवाना अनिवार्य था। अतः चुनाव की घोषणा, स्वतन्त्रता की हमारी दीर्घ, प्राचीन परम्परा की विजय थी। यह हमारे दावो, संकल्पों को पुनर्स्थापित करना था कि आज के इन गोबरगणेशों से हम नही दबेंगे।

इस सारे काल में 'द इडियन एक्सप्रेस' के अबू के कार्टून इसके प्रमाण थे कि लोग रिस भले ही रहे हों पर झुके नही थे। 'एक्सप्रेस' के सम्पादक नरसिंहन का वह विशेष लेख जिसमे कहा गया कि नयी दिल्ली कूडे डिक्टेटरों के स्वागत में लाल कालीन बिछा रहा है, करोड़ों लोगो के प्रतिनिधि को, जो कि जेलों में बन्द थे, जीवित रखे थे। उस दमघोटू वातावरण में यह ताजी हवा जैसा था।

और तब चित्रकार श्री प्रभाकर शर्मा द्वारा विनोबा के आश्रम के सामने आत्मदाह का समाचार आया। स्पष्ट हो रहा था कि "यदि शिशिर आ गया है तो वसन्त कैसे पीछे रह सकता है।" और हुआ भी ऐसा नही।

* * *

९

• बन्दी-जीवन

रोहतक में हम लोग पाँच वार्डों में बँटे हुए थे । डॉक्टर कमला वर्मा महिला वार्ड में, श्री हरद्वारी लाल 'इकबाली गवाह वार्ड' में तथा हममे से कुछ पुस्तकालय वाले ब्लाक में थे । लेकिन हरियाणा के अधिकाश बन्दी 'मुडाखाना' (बच्चों का वार्ड) और दिल्ली के अधिकाश 'मनोरंजन-कक्ष' में थे । हम एक दूसरे का खासा मनोरंजन करते रहते थे । नरवाना के बीरबल गुप्त रोहतक के रघुवीर सिंह हुदा के साथ मिलकर सचमुच ही बीरबल थे । इस नाम के ऐतिहासिक व्यक्ति ने जितना अकबर का मनोरंजन किया होगा उससे किसी कदर कम हमारा नही किया होगा ।

लेकिन जेल कर्मचारी कैसे थे ? कहना चाहूँगा कि यह जेल-जेल पर निर्भर करता है । रोहतक मे अच्छे, हिसार मे बुरे और दिल्ली में उदासीन । फिर, जेल-विशेष मे भी कोई व्यक्ति होता है जो फिजां ही बदल देता है । तिहाड़ में एक अफसर महाशय बडी उपेक्षा बरतते थे फलतः उन दिनों के सांसद जगन्नाथ राव जोशी ने उसे अपने कमरे से लगभग चिघाड़ते हुए निकाल दिया; "और तो और राष्ट्रपति तक खड़े होकर स्वागत करते हैं, लेकिन इन महाशय को इतनी भी तमीज नही कि हमें कुर्सी के लिए भी कहें ।

कुछ खुशामदी कांग्रेसी जनता के उफनते ज्वार को देखकर घबराये हुए थे, वे भौचक थे कि 'उनका क्या होगा ?' जो अधिक समझदार थे वे उन्हें कहते, "तटस्थ हो जाओ तो मुश्किल मे नही पड़ोगे ।"

हालांकि जेल अधिकारियों से तनावहीन सम्बन्ध ही अच्छा होना है, परन्तु सबसे अच्छा तो है कि उनसे निकटता न हो । ये वे लोग हैं जो 'सरकारी नौकर' हैं । वे आपको आपसी बातचीत को ऊपर पहुँचाकर शाबासी प्राप्त करने की कोशिश मे रहेंगे । मैं एक अधिकारी को जानता हूँ जिसने एक मुलाकाती वरिष्ठ वकील से चर्चा की और ऊपर खबर कर दी कि राजनारायण के मामले मे वह

क्या कानूनी लाइन लेने वाले है। इस रिपोर्ट को बहुत अनुकूल पाया गया फलस्वरूप उनके मासिक वेतन से दुगुना, १५०० रुपये का पुरस्कार उन्हें प्राप्त हुआ।

'अच्छे' अफसरो के प्रसग में मैं 'हवामहल' वाले अध्याय में २६ जून १९७६ वाले सामूहिक उपवास के सन्दर्भ मे खीर के रोचक प्रसंग का वर्णन कर चुका हूँ। इसके बाद तो दावत उड़ाने वाले बन्दी मजाक के विषय ही बन गये। एक सवेरे बन्दी लोग पीलू को घेरकर बैठे हुए थे 'उनमे' के एक 'मित्र' भी आ धमके। अपनी अप्रतिम विनोदप्रियता के साथ पीलू ने पूछा "तो भाइयो, आज के दिन का शैतानी क्या है ?' और सब हँस पड़े।

मुझे याद है कि जिस दिन मुजीब का पत्ता साफ हुआ उस दिन एक अफसर कितनी उत्सुकता से मुझसे प्रश्न कर रहा था। जब चुनाव की घोषणा हो गयी तब कुछ और राजनीतिक कैदियों की ड्योढ़ी पर बुलाहट हुई कि वे मालूम करें कि हम लोग कहाँ से किसको खडा करने की चर्चा करते है। शायद बसीलाल ने भिवानी से लडने की कभी घोषणा न की होती यदि उन्हे पूर्व मालूम होता कि चन्द्रावती वहाँ से लडेगी।

और जेल-डाक्टरो का क्या हाल है ? अगर आप जेल मे बीमार पड गये, तो यह आपकी मर्जी। घर से दूर बीमार पडना, परेशानी तो है ही। फिर भी आप पड ही गये, तो क्या हुआ ? रोहतक में इसकी कोई समस्या नही थी। वहाँ जेल में एक सरकारी डॉक्टर है और शहर में एक प्रथम श्रेणी का मेडिकल कालेज तथा अस्पताल है। डॉक्टर लोग योग्य और सहानुभूति रखने वाले हैं। लेकिन हिसार का हिसाब ही अलग है। वहाँ एक जूनियर डॉक्टर है जो इतना घबराता रहता था कि वह एक हाथ हमेशा जेब मे ही डाले रहता। उस बेचारे के पास साधारण विटामिन 'बी' की भी गोलियाँ नही थी।

फिर भी, तिहाड़ का तो भगवान् ही मालिक था। यहाँ आपको सामान्य रूप से डॉक्टर के दर्शन दुर्लभ थे। मुझे चार महीने में एक के सिर्फ दो बार दर्शन हुए। बुरी बात तो यह थी कि हजरत डॉक्टर लगते ही नही थे। हमेशा मुँह में एक ओर पान दबाये फूले गालों वाला यह व्यक्ति 'पान-बीड़ी वाला' अधिक लगता था। आप कभी निरापद हो ही नहीं सकते थे कि श्रीमान् आपको कभी भी सही दवा दे सकेंगे। हममें से कइयों ने कोई दवा नही खायी और मेरा ख्याल है कि बहुत बुरा भी नहीं रहा।

एक जेल से दूसरी जेल, और अधिकारियों को समझ मे नहीं आता था कि हमारे साथ कैसा व्यवहार किया जाए। वास्तव मे हमारी स्थिति क्या थी ? दिल्ली मे, मीसा नियम जैसी कोई चीज सरकार ने नही बना रखी थी। इमरजेंसी

के बहुत पूर्व दो पंक्तियों में अधिकारियों को सूचित कर दिया गया था कि मीसा बंदियों को 'अंडर ट्रायल्स' का व्यवहार दिया जाए। लेकिन हम और जो कुछ भी रहे हों, न रहे हों लेकिन स्पष्टतः 'अंडर ट्रायल्स' तो नही ही थे। हममें से किसी पर कोई मुकदमा चलाने का कभी नही सोचा गया। रोहतक में यह धारणा थी कि हम एक प्रकार के 'सिविल' बन्दी हैं। फलतः नतीजा यह था कि 'अन्डर ट्रायल' और 'सिविल प्रिजनर' दोनों की ही खराबियाँ भुगतनी पडी। तिहाड़ जेल मे हमें कोई पत्रिका नही मिलती थी। हालाँकि हरियाणा मीसा कानून १६ (२) के अनुसार अधिकारी विद्यार्थियो को अध्ययन कर सकने की तथा परीक्षाओं मे बैठ सकने की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए बाध्य थे। लेकिन यहाँ तथा अन्यत्र आदेश दिये गये थे जिसके कारण विद्यार्थियों को परीक्षाओ में बैठने से वंचित कर दिया गया था। पूरे देश मे हजारो विद्यार्थियों का एक वर्ष का नुकसान हुआ और सौ में से एक को भी परिवार के भरण-पोषण का भत्ता नही मिला।

खैर, जेल होती ही 'विचाराधीनो' तथा दोषियों के लिए है। ये किस प्रकार के होते है। मैं एक तथ्य पर जोर देना चाहूँगा कि बाहरी दुनिया से जेल का अन्तरंग बहुत भिन्न नहीं है। जेल में जो चेहरे आप देखते हैं उसमें से अधिकांश मिलते-जुलते चेहरे आपको फार्म, कारखाने या सड़कों पर मिल जाएँगे। दोषियों में बहुत थोड़े से होते हैं जो प्रकृत्या अपराधी होंगे। अधिकाश तो कानूनपरायण नागरिक होते है।

दोषी पाये गये हत्यारो के बारे मे मान लिया जाता है कि ये नम्बरी अपराधी है। और फिर भी उनमें से अधिकाश ऐसे कुछ नही होते। बहुत थोड़े से मँजे हुए अपराधी होते हैं। बहुत से 'हत्यारे' तो 'बिना सोचे' हुए होते हैं, जमीन आदि के झगडे से आरम्भ। इसके बाद लट्ठमलट्ठ। अब यह संयोग कि एक हाथ पडा और कपाल भभक पडा और 'हत्यारे' बने घूम रहे हैं।

फिर बहुत से झगडे ऐसे जिनमे एक आदमी 'इज्जत' के सवाल पर दूसरे का खून कर देता है। ज्यादातर खून तो इज्जत को लेकर होते है न कि अपराधी मनोवृत्ति के कारण।

मुझे ऐसे कई मामले भी मालूम हैं जिनमें हत्या के लिए दोषी पाये गये व्यक्ति अपराध से सर्वथा अनभिज्ञ थे। लगता है गाँवों में यह आम रिवाज है कि जब एक या दो आदमी हत्या कर डालते हैं तब निकट के सारे वयस्क पुरुष सम्बन्धियों के नाम एफ० आई० आर० मे लिखवा दिया जाता है। अधिकाश अपनी अन्यत्र उपस्थिति सिद्ध करने में कठिनाई अनुभव करते है और अगर एक दर्जन नाम एफ० आई० आर० मे लिखवा दिये गये तो आधे दर्जन को तो आसानी से ६.

में दोषी सिद्ध करवा दिया जा सकता है। इस प्रकार कई हैं जो वर्षो से जेल में सड़ रहे हैं।

कुछ चोर है जो केवल रोमांचकता के ख्याल से चोरी करते है। कुछ लोगों के लिए यह जीवन बड़ा ही नीरस होता है और उन्हें जेब काटने या खुल कर खेलने मे ही आनन्द आता है और तब जेल पहुँच कर यार-दोस्तों के साथ गुजरती है। मुझे एक चोर मिला जिसके पिता की कपड़े की दूकान है। वह बोला कि दिन भर गज से कपडा नापते बैठना बडा ही बोर काम था, जेल उसे अधिक उत्तेजक लगती है।

रोहतक के दिनों मे एक फाँस लगी। जैसे ही वह व्यक्ति मरने के लिए उद्यत हुआ कि उसने तीन नारे लगाये : 'भारत माता की जय' 'गो माता की जय' सब भाइयों को नमस्ते।' मृत्यु की कगार पर खड़ा ऐसा मनुष्य कभी भी पेशेवर अपराधी नही हो सकता।

मैं आश्वस्त हूँ कि इन जेलवासियों मे से यदि ५० प्रतिशत भी छोड़ दिये जाएँ तो भी अपराधो की दर मे ५ प्रतिशत भी वृद्धि नहीं होगी।

'आजीवन-दण्ड' पाये व्यक्तियों को विभिन्न अवधियो तक रखना हास्यास्पद है। दस वर्ष की सजा भुगतने के बाद उन्हे हजारों रुपये पुलिस को घूस में देने पड़ते हैं, ताकि वे मुक्ति के लिए उनके नाम की सिफारिश कर सके। दस साल की जेल के बाद तो सचमुच का हत्यारा भी टूटा हुआ इन्सान हो जाता है, इसके बाद फिर हत्या कर सकने की संभावना ही नही। इसलिए सहज बुद्धि तो यही कहती है कि जैसे ही दस वर्ष पूरे हों अपने आप मुक्त कर दिये जाने चाहिए। पुलिस की इच्छा पर मामला छोड़ने का मतलब ही है नियमित भ्रष्टता को आमंत्रित करना।

दस वर्षो से धूल खा रही जेल-सुधारों की रिपोर्ट को यदि क्रियान्वित किया जाए तो सरकार एक अच्छा काम करेगी।

जेल मे, जेल ही एकमात्र वास्तविकता है, बाहर का ससार अयथार्थ लगता है। जेल ही आपका संसार है तथा बाहरी दुनिया तो माया है। बाहरी दुनिया में लौटने पर जेल एक दुःस्वप्न-सी लगने लगती है। यथार्थ और अयथार्थ को पृथक् करने वाली एक पतली रेखा ही तो है। ऐसा लगेगा कि स्वतः न तो कुछ यथार्थ है और न ही अयथार्थ। हमारा सोचना उन्हे ऐसा बनाता है।

क्या जेल, बाहरी दुनिया से आश्रम के ढंग पर कटा हुआ होता है? नही, ऐसा तो नही है।

मजा तो यह कि जेल में भी अधिकाश खबरे आपको मिल जाती हैं। बल्कि कई बार तो जेल मे ऐसी खबरे मिल जाती हैं जिन्हे बाहर आसानी से नही पाया जा सकता। उदाहरण के लिए हमें मालूम था कि क्या होने वाला है जब सेना के तीनों अध्यक्षों को लेकर बसीलाल संजय को एक मीटिंग मे ले जाने की कोशिश में थे। हमें प्रकाश चन्द्र सेठी के पागलपन के प्रलापों का कच्चा चिट्ठा मालूम था। हमें यह भी ज्ञात था कि पी० सी० लाल के साथ क्या घटा (बाद मे श्रीमती और श्री लाल अपना वोट डालने विमान से कलकत्ता से बम्बई खास तौर से आये थे।) चाहे वह बंगाल की जेलें तोडना रहा हो या हाईकोर्ट के दर्जन भर न्यायाधीश के तबादले हों या अलवर के राजकुमार की रहस्यात्मक मृत्यु हो—हमे देर-सबेर निश्चित रूप से पता चल जाता था। 'सत्य समाचार' निश्चय ही सूचना की खदान होता था तथा जिसकी प्रतीक्षा उत्सुकता से किया करते थे।

कुछ मौलिक समाचार तो इतने अच्छे होते थे कि उन्हें किसी ग्रन्थ में संकलित किया जा सकता था। एकाध घोटाला भी हो ही जाता। जब कभी पुलिस की ज्यादतियो की खबरें आती तो बड़ी उत्तेजना फैल जाती थी और तब यह खबर अधिकारियों तक पहुँच जाती। और तब वे हमसे इसकी सूचना माँगते, जबकि उन्हे उपकृत करने को जरा भी हमारा विचार न होता। ऐसी हालत में सहसा तथा आकस्मिक जाँच-पड़ताल की संभावना होने पर तय होता कि सारे कागजो की होली जलायी जाए। मेरा ख्याल उस दिन हमारा भोजन अधिक गरम होता।

तुर्कमान-गेट हत्याकाण्ड का समाचार हमे रोहतक मे दूसरे दिन मिला। सगठन काग्रेस की जनरल सेक्रेटरी राजमाता पटियाला, सगठन कांग्रेस के अध्यक्ष अशोक मेहता से मिलने आयी और बताया कि उनके नौकर 'गम्भीर घटना' की खबर लाये है। कुछ दिन बाद सुन्दरी ने खबर की पुष्टि की। 'कितने मारे गये होंगे ?' 'एक ट्रक भर' उसने कहा। क्या यह सच हो सकता है ? तीसरी मुलाकात मे खबर की पूर्ण पुष्टि हुई और बताया कि जितना ख्याल था उससे भी अधिक गम्भीर घटित हो सकता था। सिकन्दर साहब को कोई शक नही था कि जहाँ तक मुसलमानों के रोल का सम्बन्ध है इस दुर्घटना का कांग्रेस पर बहुत ही भयकर प्रभाव पडेगा।

नसबन्दी प्रकरण से जो पीड़ा हो रही थी उसका हमें अहसास था। देश इस बात को लेकर वैसे ही उत्तेजित था जैसा कि १८५७ मे चर्बी वाले कारतूसों को लेकर हुआ था। लेकिन इस मामले मे जेल एक पुण्य-स्थल हो गया था। अधिकारी जानते थे कि यदि वन्दियों को जरा भी यह आशंका होगी कि नसबन्दी की जाने वाली है तो रातोंरात जेले ध्वस्त हो जाएँगी।

मैंने स्वय रोहतक के बच्चो वाले वार्ड में एक १४ वर्ष के लड़के को देखा। धूरी पंजाब का निवासी गणेश, जो कि वास्तव मे कर्नाटक का था, मेले मे गुब्बारे बेचने हरिद्वार गया। १६ सितम्बर १९७६ को वहाँ उसे पुलिस ने जा पकड़ा। वे उसे हरिद्वार, मायापुरी वाले नहर अस्पताल के डाक्टर वर्मा के पास ले गये जिसने उसकी उम्र २५ वर्ष दर्ज की और नसबन्दी कर दी।

जबकि नसबन्दी को लेकर बड़ा ही प्रतिरोध था, लगता है कि शिक्षित वर्ग इसे 'देहातियों के लिए अच्छी' मानने लगा था। बहरहाल ग्रामीण ऐसा नही मानते थे। इसलिए कि श्रम-प्रमुख खेती के कामों के लिए बड़ा परिवार बहुत उपयोगी होता है। दूसरे वे जानते थे कि एक बार नसबन्दी हुई नही कि फिर वे कठोर परिश्रम नही कर सकेंगे। एक डी० आई० आर० के सज्जन जिन्होंने कि स्वेच्छा से कोई पांच वर्ष पूर्व नसबन्दी करवायी थी, बोले कि अब उन्हे कमर मे स्थायी दर्द रहता है। कुछ की शिकायत थी कि आपरेशन के बाद उनकी मानसिक तत्परता जा चुकी है।

मैंने एक जेल डॉक्टर से पूछा कि इस नसबन्दी का शारीरिक और मानसिक क्या परिणाम होता है? उसके ख्याल से कुछ भी नही। उसने स्पष्ट किया कि वीर्य में चार तत्त्व होते हैं—तीन द्रव्य और चौथा ठोस वीर्य 'स्पर्म।' यह ठोस वीर्य 'स्पर्म' ही अण्डकोष से आता है और केवल इसके ही मार्ग को काट दिया जाता है। बाकी के तीन द्रव्य दूसरी जगह से आते हैं और वीर्य के रूप में उनका पतन होता रहता है। वह ठोस पदार्थ 'स्पर्म' शारीरिक क्रिया में विलय हो जाता है। 'स्पर्म' के इस विलयन का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव उस व्यक्ति पर कुछ होता है? उसे नही पता था। यह शोध के बाद ही बताया जा सकता है 'स्पर्म' के इस विलयन का मानवीय शरीर और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव होता है। साथ ही देश यह भी जानना चाहेगा कि यदि जन्म-दर को रोकने का यह सस्ता और अहानिकर रास्ता है तो दूसरे देश क्यों नही इसको काम मे लाते हैं।

१९७६ की गर्मियों मे खबर आयी कि गोरक्षा के प्रश्न पर विनोबा जी ने अनियतकालीन उपवास करने का निर्णय लिया है। हममें से अधिकांश उन्हें 'सरकारी सन्त' के रूप मे जानते थे जिन्होंने आपातकाल को स्वागत 'अनुशासन-पर्व' कहने के लिए अपने एक वर्ष के मौनव्रत को भंग किया था। और अब हर दूसरा बन्दी चिढ़ाया से मुझे 'गो-भक्त' के रूप मे देखने लगा क्योंकि मेरा संघ और जनसंघ दोनों से सम्बन्ध था, जिन्होंने पूर्ण गोवध निषेध के लिए बारम्बार मॉग उठायी थी। सबको आश्चर्य था कि दुर्बल गायों के स्थान पर भीमा बन्दियों के

लिए बाबा क्यों नही उपवास कर सके ? एक को तो यह भी लगा कि गोमांस नहीं होगा तो उसके कुत्तों की नस्ल क्या खाएगी ?

बाबा के बारे में कहने के लिए मेरे पास कुछ नही था। मुझे अभी भी वितृष्णा के साथ याद है कि पूर्व-इमरजेंसी उन्होंने जयप्रकाश जी को मैडम के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र से भाग जाने का परामर्श देते हुए उसी तरह 'रणछोड़' हो जाने के लिए कहा था जिस प्रकार कि जरासंध के साथ युद्ध में श्रीकृष्ण भागे थे। हालाँकि मैंने लोगो को स्पष्ट कर दिया गोवध के पूर्ण निषेध पर मैं बिलकुल भी क्षमायाची नही हूँ। मैंने अपने श्वान-प्रेमी मित्र से कहा कि उनके कुत्तों के लिए गायों को मारने की आवश्यकता नही पड़ेगी, शायद वे 'महिष-मांस' पाकर प्रसन्न ही रहे। मैंने आशा की कि विनोवा जी गाय के प्रश्न को एक नीति की खूँटी बनाकर इमरजेंसी जैसे महत्त्वपूर्ण सवाल को उस पर टाँगे। क्या सन १६२१ मे गाँधीजी ने भी स्वाधीनता-आन्दोलन चरखे के नाम पर और सन ३० में 'नमक' के नाम पर नही चलाया था ? हो सकता है कि गाय के माध्यम से विनोबा जी इमरजेंसी से लड़ना चाहते हों। लेकिन हम सबके मनोरंजन के लिए बहुत जल्द उन्होने श्रीकृष्ण के समान ही प्रधान-मंत्री को भी गो-प्रेमी बताया। हमारे भीतर बैठे कवि ने उन्हें तत्काल 'बैंगन' की संज्ञा दे डाली। नाम चल गया, विनोबा जी की गीता के प्रेमी भी उनकी रक्षा में एक शब्द भी नही बोल पाये। उदात्त से मसखरेपन की ओर उठाया गया कदम निश्चय ही छोटा है।

डिक्टेटरशिप के विरोध में हुए प्रतिरोध के आकार-प्रकार के बारे में जेल में मौजूद अनुभवी राजनीतिक कार्यकर्ता स्तम्भित थे। इमरजेंसी का लागू करना उस पर उसके बाद आतंकपूर्ण प्रशासन से सम्बन्धित सारी खबरों को दाब देना—सरकार ने देश को स्तम्भित कर दिया तथा कोई भी राजनीतिक गतिविधि कर सकना असम्भव बना दिया। यह भी भय था कि अनियतकाल तक के लिए लोगो को रोक रखा जाएगा तथा उन्हे अज्ञात स्थानों पर भेज दिया जाएगा। सन् १६२१, ३०-३२ और ४२ के सारे स्वाधीनता आन्दोलनों को मिलाकर भी इतने अधिक लोग कभी जेल मे नहीं गये जितने कि १६७५-७६ मे गये।

सत्याग्रहियों और बन्दियो की निष्ठा और गुण भी कम नही रहे। वकीलों, विद्यार्थियों, अध्यापकों, पत्रकारो, मजदूर नेताओं तथा पुराने स्वाधीनता सग्राम सेनानियों की विपुलता पर विश्वास करने के लिए देखना आवश्यक था। 'सम्मानितो (वी० आई० पी०) के अलावा अकेली तिहाड़ जेल में डी० यू० टी० ए० के अध्यक्ष ओ० पी० कोहली, डी० यू० एस० यू० के अध्यक्ष के० अरुण जेतली और सचिव हेमन्त विश्नोई तथा दिल्ली आई० आई० टी० की अध्यापक परिषद् के

अध्यक्ष सुरेश उपाध्याय सबके सब नर-रत्न है। हिसार में दिल्ली विश्वविद्यालय के स्वर्ण-पदक के प्राप्तकर्ता पीताम्बर गोयल थे। वह अपने पिता, दादा और चाचा के साथ सिर्फ इसलिए गिरफ्तार किये गये थे कि पिछले विधान सभा चुनाव में उनके चाचा ने बसीलाल के विरुद्ध देवीलाल के लिए तोशम मे चुनाव प्रचार के एजेन्ट का कार्य किया था। मजेदार बात यह है कि हरियाणा विधान सभा कांग्रेस पार्टी में एक भी ऐसा व्यक्ति नही था जो कभी स्वाधीनता आन्दोलन मे जेल गया हो। सन '४२ के तथा उसके पूर्व के आन्दोलनों के सारे बडे नेता जेल मे देखे जा सकते थे। अकेले रोहतक जेल में थे पडित श्रीराम शर्मा, श्री मूलचन्द जैन, श्री बलवन्त राय तयाल और श्री देवी लाल।

सरकारी सारी मुकदमेबाजियो के होते हुए भी लोगो मे इतनी उच्च नैतिकता थी कि बहुत कम ने घुटने टेके। यह गर्वीले लोगों के गरिमापूर्ण इतिहास का अद्भुत अध्याय था।

अवश्य ही जेल मे लोगो का नैतिक बल इतना उच्च था कि गैर-राजनीतिक बन्दी तक दृढ थे। गुड़गाँव जिले के एक छोटे से कस्बे सोहना से ही मीसा में सात व्यक्ति पकडे गये थे। एक आवारा लड़के ने एक लड़की के साथ अभद्र व्यवहार किया। उसकी जमानत हो गयी, लेकिन उसके तीन सम्बन्धियों को उस अभद्र व्यवहार के लिए मीसा मे गिरफ्तार कर लिया गया।

जब उनमें से एक सज्जन पैरोल पर छोडे गये तो वे अपनी गिरफ्तारी को रद्द करवाने के लिए संजय से मिले। लेकिन उनसे कहा गया कि वह नसबन्दी करवा ले। जब उन्होने इस आधार पर इंकार किया कि उनके सिर्फ दो पुत्रियाँ हैं और कोई पुत्र नही है, तब उन्हें वापस जेल भेज दिया गया। इमरजेंसी के उठ जाने के बाद ही वह छूटे।

सन १९७६ के समाप्ति के आस-पास ही ईद सम्पन्न हुई। लान में कोई दर्जन भर मुसलमान कैदी नमाज पढते दिखलायी दिये। बाद में जब वे मुबारकबाद देने हमे आये तो श्री भैरोंसिंह और श्री बलदेव तयाल ने उन्हे मिठाइयाँ दी। इस आचरण ने उन लोगो की आँखों में आँसू ला दिये, क्योंकि वे जानते थे कि भैरोंसिंह तथा बहुत से दूसरे संघ के लोग हैं। थोड़े दिन बाद उन सबकी बदली अम्बाला कर दी गयी। लगता है कि 'किसी' को हिन्दुओ और मुसलमानों की यह निकटता प्रिय नही लगी।

* * *

१०

• मुसलमान–एक नया परिप्रेक्ष्य

जेल के लम्बे-लम्बे महीनों ने मुझे खूब और विविध अध्ययन का अवसर दिया। शा और शेक्सपियर को पहली बार जमकर पढ़ा। विलियम डूरां के दस जिल्दों वाले 'स्टोरी ऑफ सिविलिजेशन' को भी आद्यन्त पढ सका। टायनबी के १२ जिल्दों वाले 'स्टडी ऑफ हिस्ट्री' के लिए साहस नही जुटा सका। लेकिन जो दूसरा अच्छा काम किया वह यह कि उसका अद्‌भुत सारांश पढ गया। डूरां का 'प्लेजर्स ऑफ फिलासफी' और एल्डुअस हक्सले का 'पेरेन्नियल फिलासफी' तो मेरे निरन्तर के साथी हो गये। र्‍यूकोर्ट के 'सेक्स एण्ड पावर इन हिस्ट्री' ने तो बस मोह लिया। और पहली बार ही किसरलिंग के 'ट्रेवल डायरी ऑफ ए फिलासफर' के दोनों दुर्लभ भाग पढ सका। संकलन 'एन्थालाजी ऑफ वर्ल्ड पोएट्री' तो साहित्य की सम्पूर्ण दावत था। हेस झिंसर का 'रेट्स, लाइस एण्ड हिस्ट्री' का पढ़ना तो अकल्पनीय था। आस्टेन्डर और स्क्रोडेर के 'साइकिक डिसकवरीज बिहाइन्ड द आइरन करटन' ने मनोगति के नये संसार का उद्‌घाटन किया। डेविड हलवर्स्टम के 'द बेस्ट एण्ड ब्राइटेस्ट' ने केनेडी प्रशासन की सारी चमक-दमक का एक अन्तरग चित्र प्रस्तुत किया।

साहित्य, इतिहास और दर्शन के समस्त आनन्द का उपयोग करते हुए भी मेरा ध्यान कभी भी भारत की आधारभूत समस्याओं जैसे जाति और समुदाय से हट नही सका। सामाजिक समस्याओं का विद्यार्थी होने के कारण हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर मैंने अन्य किसी भारतीय समस्या की अपेक्षा ज्यादा ही पढ़ा है। अब मैं इसके बारे मे और भी ज्यादा पढ़ता हूँ। आरम्भ के ख्याल से इलियट और डासन के बहुभागीय ग्रंथ : 'हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन (मिडीविअल) 'हिस्टोरियन्स' पढ़ता हूँ। जेल के एकान्त में जब इस सब पढ़े हुए पर मनन करता हूँ तो पुरानी समस्या पर नई रोशनी पड़ती हुई दिखलायी देती

है। सहसा एक हल दिखलायी पडने लगता है। अब समझ पाता हूँ कि हमारे स्कूलो मे पढ़ाया जाने वाला इतिहास "सत्य, सम्पूर्ण सत्य, अन्य कुछ नही केवल सत्य" नहीं है। एक सम्पूर्ण इतिहास, अर्थपूर्ण तथ्यों का सम्पूर्ण आकलन ही हो सकता है और इस सम्पूर्णता का चुनाव भी संकलनकर्त्ता की रुचि और परख पर निर्भर करेगा। इस दृष्टि से सारा इतिहास आत्मपरक ही होगा। और तो और इतिहास के श्रेष्ठ ग्रन्थ तक ऐतिहासिक वास्तविकताओं के आंशिक पक्ष भर हैं। कई बार इतिहास नीति के लिए माध्यम युद्धकौशल भी हो सकता है जैसा कि टाड के 'एनल्स आफ राजस्थान' के साथ हुआ। वह राजपूतों को केवल प्रसन्न या मित्र बनाने के लिए ही नही लिखा गया था, बल्कि उन्हें मराठो के विरुद्ध घेरे जाने के लिए रचा गया था। टायन्बी का ग्रंथ, सामान्य रूप से धर्म को और विशेष रूप से इसाई धर्म को सबसे महत्त्वपूर्ण स्वीकारता है।

इतिहासों का प्रणयन हमे केवल दिशा निर्देश या सूचित करने के लिए ही नही लिखे जाते हैं बल्कि हमें सलाह, सावधान और प्रेरणा भी देते हैं। अध्ययन के दौरान मुझे यह अनुभव हुआ कि मुस्लिम आक्रमणों के सन्दर्भ मे हिन्दुओं का जो आचरण था उसमें लज्जित होने की कोई बात नही है, बल्कि यह तो ऐसी बात है जिस पर गर्व किया जा सकता है। मैं क्रमशः आश्वस्त हुआ हूँ कि भारत मे हिन्दू और मुसलमानों का सह अस्तित्व शांतिपूर्ण तथा लाभकारी ढग से सभव है। इतिहास से यह आशा की जाती है कि वह अतीत से सम्बन्धित वर्तमान को दिशा दे। किसी एक क्षेत्र में बसने वाले लोग आपस मे लड़ते रहे है, परन्तु वे इन गृह-युद्धों को खासतौर से याद नही किया करते। बहरहाल वे उन पडोसी समाजों से हुए युद्धो को याद करते हैं तथा भड़कते रहते हैं जो **कि आज भी उनके प्रतिद्वन्द्वी हैं।** अशोक के कलिंग आक्रमण के विरुद्ध, जिसमें एक लाख हताहत हुए थे, उडीसा में बिहार के लिए आज कोई विरोध नही है, लेकिन गजनवी के भारत आक्रमण को सब साश्रु याद करते है। कारण सीधा है : बिहार और उडीसा भारत संघ के अगी राज्य हैं, लेकिन गजनी भारत के बाहर है तथा गजनवी उन लोगों का नायक है जिसने भारत का विभाजन माँगा और प्राप्त किया।

हम सब अकबर के चित्तौड़ आक्रमण को तो याद करते हैं परन्तु हममे से कइयों को पता भी नही होगा कि मराठों ने भी मेवाड पर आक्रमण किये और लूटा। कारण, मराठा और राजपूतों में आपस में आज कोई समस्या नहीं है, यदि कुछ है तो वह यह कि वे एक-दूसरे की युद्ध परम्परा पर गर्व करते हैं।

जब बंगाल मे चौथ वसूलने के लिए शिवाजी ने आक्रमण किया तो वह

बंगाली बच्चों के लिए हौआ बन गया। लेकिन जब भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में बंगाल और महाराष्ट्र ने प्रमुख भाग लेना शुरू किया तो बंगाल ने शिवाजी को एक भिन्न आलोक में देखा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक स्मरणीय कविता में लिखा, "जब तुम पिछली बार आये थे तब हमने तुम्हें गलत समझा, कृपया तुम फिर आओ।"

आँखों में आँसू आ जाते हैं जब यह पढ़ते हैं कि संगम के तट पर लगे प्राचीन पवित्र अक्षयवट को जहाँगीर ने जड़ से खोद डाला—और जड़ों को जलवा डाला। कोई छिटपुट जड़ अगले वर्ष फिर अंकुरित हो उठी और वह विशाल वट आज भी इलाहाबाद के किले में विद्यमान है। लेकिन हममें से कितने जानते हो हैं या फिर सुनकर आँसू बहाएँगे कि बौद्ध होने के पूर्व अशोक ने भी इसी प्रकार बोधिवृक्ष उखाड़ फेंका था। यह वृक्ष भी अगले वर्ष अंकुरित हो उठा था। आज हम सुनकर दुःखी नहीं चकित होते है। सीधा सा कारण है; जहाँगीर भारत और पाकिस्तान के अनेक मुसलमानों का नायक है जिनसे हिन्दुओं और भारत के कुछ प्रश्न उलझे हुए है। अशोक, बौद्ध धर्म से किसी की कोई समस्या नही है।

गुरु गोविन्द सिंह के दो छोटे बच्चो को उनके अभिभावक, जो कि ब्राह्मण था, ने धोखा देकर मुगलों को सौंप दिया। लेकिन यह सब,भूला जा चुका है, क्योंकि सिखों और ब्राह्मणो के बीच अब कोई समस्या नही है।

सन् १८५७ में सिखों ने ब्रिटिश की तरफदारी की लेकिन इसके लिए कोई उनके विरुद्ध कुछ नही कहता; ऐसा इसलिए कि गैर सिखों को सिखो से कोई झगड़ा नही है।

हिन्दू और मुसलमानो के बीच चले आते दीर्घकालिक विद्वेष को न तो कम करके ही देखना चाहिए और न कोई कर ही सकता है। और फिर भी ये ऐतिहासिक विद्वेष आज इसलिए सक्रिय है कि हिन्दू-मुसलमान और भारत-पाकिस्तान के बीच समस्याएँ मौजूद है। इन समस्याओं की परिसमाप्ति के साथ ही पुरानी दुःखद स्मृतियाँ भी विलीन हो जाएँगी, क्योंकि स्थितियाँ १९४७ के समय की-सी नहीं हैं, वरन् सर्वथा भिन्न हैं। हम जितना सोचते हैं शायद उससे भी जल्द ये समस्याएँ इस गम्भीर स्वरूप में नही रहेंगी।

जैसे हो और जब भी हिन्दू-मुस्लिम समस्याएँ याद पड़ेंगी तब भूलो और माफ करो की समझ उत्पन्न होगी। हम जानते हैं कि महमूद गजनवी मूर्तिभंजक था जिसने सोमनाथ की मूर्ति तोड़ने के लिए करोड़ों की सम्पत्ति को भी ठुकरा दिया था तथा यह कहते हुए मूर्ति तोड़ने का काम करता रहा कि वह 'बुतशिकन' है, 'बुतफरोश' नही। लेकिन घटना गलत है। महमूद के इतिहासकार

अलबरूनी ने, जिसे 'तारीख यामिनी' के उत्वी ने उद्धृत किया है कि सोमनाथ में कोई मूर्ति नही थी केवल एक शिवलिंग था। महमूद ने अपने सिक्कों पर लक्ष्मी अंकित करवायी थी। ऐसा न होता तो उसकी मुद्रा भारत में प्रचलित ही नही हो पाती।

महमूद के पूर्वज शैव थे तथा उसके सिक्के भी। उसके उत्तराधिकारियों के सिक्के भी शैव थे जिन पर शिव का नन्दी बना हुआ था।

बाबर ने मृत्यु शैया से हुमायूँ को यह परामर्श दिया था कि यदि वह अपने साम्राज्य को स्थायी बनाना चाहता है तो गोवध बन्द करना होगा और गोवध बंद रहा—जब तक कि औरगजेब ने आकर सारी नीति नही उलटी। अकबर तो यह कहते हुए शाकाहारी हुआ था कि, "मेरा पेट कोई ऐसी फिजूल की जगह नही है जहाँ मरे हुए जानवरों के लिए मकबरा बनवाऊँ।" शाहजहाँ तीन-चौथाई हिन्दू था। उसकी माँ, मानबाई हिन्दू थी तथा उसका पिता जहाँगीर जोधाबाई का पुत्र था।

औरंगजेब सीमातीत धर्मान्ध नृशंस था। लेकिन जब हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल हो जाएगी तब औरंगजेब की नृशंसता भी भुला दी जाएगी और तब हम उसे दिल्ली के उस चक्रवर्ती राजा के रूप में याद करेंगे जिसके फरमान दक्षिण भारत से मध्य-एशिया तक लागू होते थे।

हुमायूँ कबीर के अनुसार भारत में मुसलमान और मुसलमान मे जितनी लड़ाइयाँ हुईं उतनी हिन्दुओ और मुसलमानो मे नही हुईं।

यह माना जाएगा कि पाकिस्तान जानी दुश्मन है हर उस चीज का जो हिन्दू है। फिर भी जब पाकिस्तान ने पुरातत्ववेत्ता समार्टीमेर ह्वीलर को 'पाकिस्तान के पाँच हजार वर्ष' शीर्षक से एक इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया तो इसका मतलब था कि प्राचीन हिन्दू-दाय को मान्यता दे रहा है। जिस प्रकार कि मिस्र फरोज़ और क्लियोपेट्रा को अस्वीकार नही कर सकता उसी प्रकार पाकिस्तान भी पुरु (पोरस) और दाहर को नही अस्वीकार कर सकता। यह केवल समय की बात है। देखने वाले को इस चेतना का प्रमाण आज भी मिल सकता है।

मुहम्मद कासिम ने सिन्धु और सागर के संगम पर बसे देबल बन्दरगाह के रास्ते से सिन्ध पर आक्रमण किया था। विभाजन के बाद, पहली बार, पाकिस्तान के पुरातत्वियों ने वह जगह पहचा[illegible] खुदाई [illegible] मे प्राप्त शिवलिंग का गौरव के साथ प्रचार कि[illegible]

सिन्ध का अन्तिम हिन्दू सम्राट् राजा दाहिर सेन, विभाजन के पूर्व तक सिन्धी हिन्दुओं का भी नायक नही था। "दाहिर" का सिन्धी में अर्थ हो गया मसखरा मूर्ख। (जैसा कि उसके पूर्व मिस्र के फरोज़ और बाद वालों में नेपोलियन बोनापार्ट, उसने अपनी बहिन से ही विवाह:किया था) लेकिन आज सिन्धी मुसलमान बराबर एक दाहिर-दिवस मनाता है, ताकि वह मुस्लिम पाकिस्तान में अपनी सिन्धी पहचान बनाये रख सके।

बहुत पहले की बात भी नहीं—लाहौर के पंजाबी विद्यार्थी, जिनमें सभी मुसलमान, बोले कि 'वैशाखी' हमारा राष्ट्रीय-दिवस है। मुस्लिम पाकिस्तान मे वे इस प्रकार अपने पंजाबी होने की पहचान बनाये हुए थे। यह समय की बात है कि कुछ ही पहले उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के पठानों ने सगर्व जाना कि सिकन्दर, तक्षशिला के राजा पुरु के द्वारा पराजित हुआ था। अफगानिस्तान ने अपने आर्य मूल की स्वीकृति देकर अपनी विमान-सेवा को 'आर्याना' नाम भी दिया हुआ है।

१९७१ के बाद शरणार्थी लोग कराची और दूसरे स्थानों पर स्थानीय पाकिस्तानियों के साथ कठिनाइयाँ अनुभव करने लगे। इसी समय युगांडा के ईदी अमीन ने 'भारतीय मूल के लोगों' के विरुद्ध जिहाद ही छेड दिया और भारत सरकार को उनकी सहायता के लिए जाना पडा। इसी आधार पर पाकिस्तान के शरणार्थियों ने भी भारत-सरकार से निवेदन किया कि चूंकि वे भी 'भारतीय मूल के लोग' हैं, इसलिए उनकी भी चिन्ता की जानी चाहिए। मैं यह कहता हूँ कि वे बहुत गलत भी नही हैं।

हेनरी फोर्ड का यह कथन कि इतिहास 'बंक' होता है, गलत है। और जो कोई यह सोचता है, वह भी भ्रम में है कि इसका सम्बन्ध मूल अतीत से होता है। वस्तुतः इतिहास की कथा, अतीत के उस भाग की कहानी होती है जिसका वर्तमान मे भी औचित्य होता है। वर्तमान पर अतीत के प्रतिबिम्ब का नाम इतिहास है। यदि राजनीति बदलती है तो उसके साथ इतिहास भी बदलता है। अतः सवाल है : राजनीति में परिवर्तन कैसे हो और वर्तमान समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए ?

इसके पूर्व कि वर्तमान समस्याओं का कोई हल ढूंढा जाए, आवश्यक यह है कि हिन्दू को उसके शिकायत के भाव से मुक्त किया जाए तथा मुसलमान को उसके अपराध के भाव से। आज ये दोनों सम्भव लगती हैं।

मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दुओं को यह घोर शिकायत रही है कि देश को गुलाम बनाकर लाखों की हत्याएँ कीं, लूटा और शीलहरण किया। भारत का

यह शीलहरण उसे कचोटता है। लज्जित के साथ-साथ स्तम्भित भी है कि मुट्ठी भर मुस्लिम आक्रामकों ने देश पर कब्जा कर लिया था।

बहरहाल अपनी जीवनी पद्धति मे से विद्वेष को निकाल फेकने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस बात को जानें कि यह सब क्यों और कैसे तथा किन परिस्थितियो मे घटा।

यद्यपि भारत पर मध्य एशिया द्वारा किये गये सारे आक्रमण विश्व इतिहास के सबसे दु:खद अध्याय हैं फिर भी उनमें कोई विशेषता नही थी। मंगोल, तातार तथा तुर्क और दूसरे कबीले, जिन्हे उनके जातीय नाम 'तुर्क' से हम समेट सकते हैं, जो कि मध्य एशिया में रहते थे, शताब्दियों तक आस-पास के देशों के लिए, जिनमें चीन, रूस, ईरान और बेशक भारत भी, परेशानी के कारण रहे। विभिन्न कारणों से बर्बर हमेशा सभ्य व्यक्तियों के मुकाबले लाभ में ही रहते हैं।

एक बात यह, जैसा कि दो हजार वर्ष पूर्व ईरान के सम्राट् साइरस ने कहा था कि सभ्य देश, सभ्य व्यक्तियों को जन्म देता है और क्रूर देश, क्रूर व्यक्तियों को। युद्ध-विद्या की यह स्वयसिद्ध मान्यता है कि हर सेनापति अन्तिम लड़ाई के लिए तैयार रहता है। आक्रामक, जो कि पहल करता है हमेशा अपनी रणनीति तथा शस्त्र-बल मे हठात् आक्रमण के नये हथकंडों के द्वारा सामने वाले प्रतिरक्षक को चौंका सकता है।

तीसरे यह कि आक्रमणकारी विदेश तथा अपरिचित धरती मे आया हुआ होता है। यदि वह हारता है तो उसका सर्वनाश निश्चित ही है, इसलिए वह शैतान की तरह जी-जान से लड़ता है। प्रतिरक्षक की तो वह मातृभूमि ही है। प्राय: वह सुरक्षा के लिए भाग जाता है। सभ्य होने के नाते, प्राणों के सकट के सामने सम्पत्ति के स्थान पर वह प्राणो को तरजीह देता है। काल के स्थान पर वह देश का सौदा करता है, और किसी दिन युद्ध कर सकने के लिए जीवित रहता है। उदाहरण के लिए सुदूर मदुरै में, आज भी गुजरातियो का एक खासा बड़ा समुदाय देखा जा सकता है, जो कि गुजरात के अनेक आक्रमणो के समय वहाँ गये। नीतिवश पीछे हटना सैन्यशास्त्र का मान्य सिद्धान्त है। इसके लिए किसी को भी लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। अग्रेज समझदार थे जो सन् १९४० में डंकर्क से पीछे हटे। मास्को-मोर्चे के समय १९४१ के शरत में सुरक्षा और यातायात की दृष्टि से किसी सुरक्षित स्थान पर अपने सेनापतियों को पीछे न हटने देने में हिटलर की मूर्खता ही थी। यह हमेशा अच्छा होता है कि कल टूटने के बजाय आज झुक जाया जाए।

इस मध्य एशियाई मानवीय विस्फोट मे चौथा कारण था-घोड़ा। युगो मे

रथों आदि में हाँकने के लिए इसका पोषण होता रहा है, परन्तु एक हजार वर्ष ही हुए होंगे जब कि घोड़े को अश्व-सेना के रूप में काम में लाया जा रहा है। यह तब संभव हुआ जब नन्ही-सी लोहे की रकाब का आविष्कार हुआ, जिसके बिना घोड़े पर मुश्किल है संतुलन रखना और युद्ध करना। अश्व-सेना की स्थापना ने शिकार हुए लोगों के संदर्भ में आक्रामकों को भारी लाभ पहुँचाया। उनके पास न केवल संसार के श्रेष्ठ घोड़े ही थे बल्कि अपने बचपन से ही वे अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व के साथ उन घोड़ों के बीच जिये, घूमे-फिरे। जिस प्रकार कि किसी आधुनिक अमरीकी को कार के बिना कल्पित नहीं किया जा सकता उसी प्रकार बिना घोड़े के एक मंगोल को नहीं सोचा जा सकता। अवश्य ही हमें हाथी का लाभ था, परन्तु घोड़ा अधिक गतिशील सिद्ध हुआ अतः सांघातिक भी। घोड़ा गतिशील था, हाथी न केवल मंथर ही बल्कि बाणों की वर्षा का अच्छा-खासा लक्ष्य भी सिद्ध हुआ। यह वैसा ही हुआ जैसा कि सन् १९७१ मे पाकिस्तान के भारी-भरकम अमरीकन फाइटर बमवर्षकों के मुकाबले हमारे छोटे-छोटे नेटों ने मार-मार कर भारी नुकसान पहुँचाया। घोड़े ने सारा सैनिक सन्तुलन ही बिगाड़ दिया।

पचवाँ कारण था भारत की सम्पति की किंवदन्तियाँ। तैमूर जब लूटने और हत्या करने के लिए तरस रहा था तब उसने अपने दरबारियों से पूछा था कि 'गाज़ी' कहलाने के लिए वह भारत या चीन किस पर हमला करे ? जबकि दोनों ही नास्तिक, काफिर थे।

वे सब सहमत हुए कि भारत अपनी पाँच नदियों, घने जंगलों, बहादुर सेना और हाथियों, 'जो कि अपनी सूँड़ में सवार के साथ घोड़े को हवा में उछाल कर जमीन पर पटक देंगे' के द्वारा अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है। लेकिन उन्होंने एकमत से अधिक सुरक्षित, बलवान देश से लड़ना तय किया, क्योंकि वह धनी भी अधिक था। मुँह से बात चुराते हुए शाहजादा मुहम्मद सुल्तान बोला : 'पूरा हिन्दुस्तान सोने और जवाहरात से भरा हुआ है, वहाँ के पेड़ों से कपड़ा तैयार होता है, वहाँ सुगन्धित वृक्ष है, गन्ना है और पूरा देश बहुत ही खूबसूरत है।'' चीन की सुरक्षात्मकता या सम्पत्ति के बारे में किसी ने एक शब्द नहीं कहा। यह भारत की सम्पत्ति की किंवदन्ती थी जिसने उन सब को मोहा। तैमूर के कथनानुसार जब वह भारत में प्रविष्ट हुआ तो उसकी 'सेना चीटियों और टिड्डियों के दलों से भी बढ़ गयी।'' तैमूर ने बहुत भोंड़े ढंग से कहा है : ''अपने दीन के लिए लड़ने वाले मुसलमान के लिए जिस प्रकार माँ का दूध जायज है उसी तरह लड़ाई में लूटमार भी।''

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि देश का विपुल आकार और उन दिनों यातायात की जो स्थिति थी उसे देखते हुए अखिल भारतीय सुरक्षा कर सकना असम्भव था। अभी पूरे देश को खबर दी जा सके इसके पहले ही दुश्मन आप पर सवार है। फिर भी गजनवी के छठे आक्रमण के समय अनंगपाल के झण्डे के नीचे ग्वालियर, दिल्ली, अजमेर, कन्नौज और कलिंग तक की सेनाएँ जमा हुई थी। युद्ध की सहायता के लिए स्त्रियों ने अपने आभूषण तक दिये थे। लेकिन मैदानी सेनाओं को उस ग्यारहवीं सदी में खैबर की जलवायु वैसी ही परीक्षा ले रही थी जैसी कि २० वी सदी मे नेफा की। इसलिए वास्तव में तो आक्रामकों का सामना सीमा के निकम्मे लोग ही कर रहे थे।

भारत के मामले मे तो तुर्क, जो कि मध्य एशिया की वर्बर जातियों की जातिवाचक संज्ञा है, और इस्लाम ही हैं जिन्होंने भारत को पादाक्रान्त किया। मूर्तिपूजक हूण और सीथियनों के मुकाबले में केवल मुसलमान ही नहीं, "जोकि एक ईश्वर, एक पैगम्बर और एक पवित्र पुस्तक में विश्वास करते थे, कम हजम के योग्य थे बल्कि बौद्धो का अन्तराल आ जाने से भारत की पाचन शक्ति भी मंद पड गयी थी। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में "बुद्ध ने हमें वैसे ही विनष्ट किया जैसे क्राइस्ट ने रोमनों का किया।" लेकिन फिर भी ये धर्मान्ध गिरोह भारत का कुछ बिगाड़ न सके। आश्चर्य यह नहीं है कि हमें पराजित किया गया बल्कि यह कि हमें विनष्ट नहीं किया गया।

हम इस संघर्षण की प्रकृति ठीक से तब समझ सकते हैं जब यह समझें कि कम वर्बर मुसलमान भी इन मध्य एशियाई मुस्लिम वर्बरों से भय खाते थे। इसलिए न सिर्फ इन्होंने मध्य यूरोप में पहुँच कर विएना के द्वार खटखटाये, बल्कि सम्पूर्ण उत्तरी अफरीका को मार कर स्पेन पर चढ दौडे और चार्लमेगन के द्वारा बडी मुश्किल से फ्रांस और जर्मनी को उनके चगुल से बचाया जा सका। इन्होंने न केवल ईरान को एक साम्राज्य के रूप मे नष्ट किया, न केवल पूर्वीय 'आरथोडाक्स' चर्च की पीठस्थली कुस्तुनतुनिया तथा बैजन्टाइन साम्राज्य पर कब्जा किया, बल्कि स्वयं खिलाफत पर ही हाथ साफ कर डाला तथा पाँच सौ वर्षों तक के लिए सारे बाल्कन और अरबों को तुर्कों के अधीन कर डाला। ये थे मध्य एशिया के 'झुलसे पीतवर्णी पशु' जो न केवल बगदाद और दिल्ली को ही लूट रहे थे बल्कि मास्को और पीकिङ् भी! इसी भूमाग को एक हजार वर्ष पूर्व सिकन्दर ने ग्यारह वर्षों में रौंदा था उस हिकमत को तुर्कों ने बारह में पूरा किया। दोनों ही मामले मानवीय विस्फोट के थे जिसके लिए न गर्व, न लज्जा कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।

वास्तव में तो भारत मे बसे मुगल भी वर्बर मुगलो के नये आक्रमणों को लेकर चिंतित रहते थे। इसलिए राजधानी बारम्बार दिल्ली से आगरा बदली जाती थी, ताकि यमुना को दूसरी सुरक्षापंक्ति के रूप में प्रयोग किया जा सके। पहले भी, महमूद गजनवी का पुत्र अमीर मसूद भी सेल्जुग तुर्कों के दबाव से बचने के लिए यह सफाई देते हुए भारत की ओर भागा था कि, "ज्योतिषियो ने कहा है कि इस जाडे में उसके ग्रह अनुकूल नही हैं।" और फलस्वरूप पूरा अफगानिस्तान लूट लिया गया था।

इसलिए आक्रमणकारियों के सामने जो आचरण रहा उसको लेकर हिन्दुओ को लज्जित होने का कोई कारण नही है। मैं तो यहाँ तक जाना चाहूँगा कि अपने आचरण पर गर्व करने के सारे कारण है। आशिक हारते हुए और थोड़ा लड़ते हुए विजेताओं के साथ भी वह इस सिद्धान्त के आधार पर हो गया कि "यदि तुम लड़ नही सकते तो साथ में हो जाओ।" महमूद गजनवी की मृत्यु के ५० दिनो के अन्दर ही उसके पुत्र मसूद ने सवेद राय और उसकी सेनाओ को उन विद्रोही सरदारों से रक्षा हेतु बुलवाया, जो कि उसके छोटे भाई का पक्ष ले रहे थे। पाँच वर्ष बाद जयसेन का पुत्र तिलक नाई को गजनी की हिन्दू सेना का भार दे कर भेजा गया, ताकि गजनी के गवर्नर पठान निआलतीगिन को दण्डित कर सके। मसूद का एक दूसरा भी सुन्दर नामक हिन्दू सेनापति था। जब बाबर ने आक्रमण किया तब उसे लोदियो से अधिक राणा साँगा से लड़ना पड़ा। और पानीपत के द्वितीय युद्ध में अकबर के विरुद्ध हेमू नामक एक तेली हिन्दू, अफगान सेनापति था।

एक प्रतिरोधी शक्ति के रूप में राणा प्रताप का कलाप जहाँ अत्यन्त वीरतापूर्ण है वहाँ जयपुर के मानसिंह के आचरण मे ऐसी कोई अधमता भी नही है। वह ईमानदारी से मानता था कि मुगलों को नही हराया जा सकता, इसलिए उसने एक मूल्य पर उनको सहायता देना स्वीकार कर लिया। जयपुर, मुगलों का आधार स्तम्भ बन गया और मुगल जयपुर पर निर्भर हो गये। इस प्रक्रिया में मुगल पालतू होते गये और जयपुर ने दिल्ली पर अधिकार करने की कोशिश की। जहांगीर द्वारा अबुल फजल की आकस्मिक हत्या, जिसने अकबर का दिल तोड़ दिया, न होती तो अकबर और मानसिह ने तय कर लिया था कि मानसिंह को 'राजव' (रीजेन्ट) बनाकर जहाँगीर के बजाय नाबालिग खुसरू को वास्तविक शासक के रूप में तख्तनशीन किया जाए, ताकि अकबर के बाद वह सम्राट् बन सके।

हालांकि यह योजना विफल हो गयी फिर भी जयपुर और तो और औरंग-

जेब के सिंहासन की भी आधार शक्ति बना रहा। औरंगजेब भी शिवाजी को अलग फेंक सकने की हिम्मत नहीं दिखा सका, क्योंकि इससे जयसिंह के अपमानित हो जाने का खतरा था, जिसने कि शिवाजी को वचन दे रखा था।

सहयोग की इस नीति ने भी लाभ दिया जिस तरह कि असहयोग और प्रतिरोध ने दिया। यह वैसा ही था कि जैसे अंग्रेजों से गांधी और तिलक असहयोग कर रहे थे तथा सप्रू, जयकर, श्रीनिवास शास्त्री तथा मालवीय सहयोग। इन दोनों पक्षों के सम्मिलित प्रयास तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन के राणा प्रतापों के द्वारा भारतीय स्वाधीनता जन्म ले रही थी।

यह वह आचरण है जिस पर कोई भी देश तथा समाज गर्व कर सकता है। वेशक, ईरान के अपवाद को छोड़कर, जोकि इस प्रक्रिया मे भंग हो गया—बाकी सारे विजित देश इस सर्वनाश के बाद शक्तिशाली बनकर उभरे। भारत में हिन्दुओं ने तुर्क साम्राज्य के ईसाइयो की भाँति—इस मुस्लिम सैन्यवाद का तीव्र विरोध स्वयं लड़ाकू बन कर किया। नतीजा था शिवाजी, और गुरु गोविन्द सिंह के १७वी तथा १८वी सदी के स्वतंत्र राज्य, उन्नीसवी सदी का आर्य-समाज और बीसवी का राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ।

अनेक नीतियों और निर्देशित प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ऐसा लगता है कि हम १३वी सदी के बाद जिस तूफान से घिर उठे थे, उससे आज मुक्त हो गये है। तुर्कों के शताब्दियों के शासन के बाद भारत मे एक भी तुर्की परिवार आप को नहीं मिलेगा। जनसंख्या के केवल दशमांश ने ही 'इस्लाम' के आधार पर भारत के बाहर जाने की इच्छा व्यक्त की थी। और यह दशमाश भी किसी पड़ोसी मुस्लिम देश की अपेक्षा हिन्दू भारत के अधिक निकट है। अपने आक्रामक के विरुद्ध भारत की जीत अब लगभग पूर्ण है। हम सफलतापूर्वक तूफान से निकल आए।

इसलिए हमें अपना शेष जीवन आपसी विद्वेष को पालते रहने तथा एक दूसरे की सच-झूठ गलतियो का लेखा-जोखा तैयार करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सिरो के ऊपर कभी मानवीय ज्वालामुखी फटा था लेकिन हम पूर्ण स्वस्थ रूप मे उसमे से बच निकले। यह है जिस पर गर्व किया जाना है। बस खटकता यही है कि कुछ गलत सूचना प्राप्त मुसलमान हैं जो देश के आक्रामको को मिट्टी का शेर बनाये हुए हैं। इतिहास की सही शिक्षा उन्हें इस बीमारी से मुक्त कर सकती है और एक सुदृढ़ भारतीय राष्ट्रीयता की सम्भावना की शुरुआत करें।

मैंने तब हिन्दुओं और मुसलमानो के बीच की विशेष समस्याओं पर सर खपाया और साफ दिखलायी दिया कि इन्हें सुलझाया जा सकता है।

यह मेरा विश्वास है कि यह कार्य एक व्यापक पैमाने पर सम्पन्न किया जाना चाहिए। इस प्रयास के लिए यह उचित मौका है।

मुसलमानों ने पाकिस्तान की माँग की और वह मिल गया लेकिन बहुत जल्द उन्हें पता चला गया कि कडवा फल था।

सफलता के उन्माद के प्रथम उन्मेष में वे चिल्लाये थे : "हँस के लिया है पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिन्दुस्तान।" आज स्वय पाकिस्तान विमक्त खडा है और वे जानते हैं कि ये वही पुरानी आक्रामक नीति बरतेंगे तो शून्य में विलीन हो जाएँगे, जहाँ से कि पहली बार स्वरूपित हुए।

उचित अवसर है क्योंकि १९६५ और १९७१ की लड़ाइयो ने पाकिस्तान को उसकी अपनी जगह पर पहुँचा दिया है। इसकी माँग बढ रही है कि वास्तविक सचाइयों को स्वीकार कर लिया जाए। हिन्दू जानते हैं कि मुसलमानों को छूः नही किया जा सकता और मुसलमान भी जानते है कि हिन्दुओं को छूः नही किया जा सकता। पाकिस्तान का 'डान' अखबार वर्षो तक हिकारत से हिन्दुओं को 'धोतीवाला' और 'पापड़ भोजी' सज्ञित करता रहा। वह बात-बात में 'भयकर' हिन्दुओं से चौकता है।

मेरे एक मुस्लिम दोस्त ने एक बार कहा कि भारतीय मुसलमान की मनोवृत्ति वही है जो कि एक आदमी की रेलवे प्लेटफार्म पर होती है। वह अपनी उस विशेष रेल की प्रतीक्षा कर रहा है जो उसकी कल्पना मे है और जो कि उसे पूर्ण मुस्लिम-भारत ले जाएगी। ऐसी ट्रेन न कभी आती है और न आ ही सकती है।

खिलाफत आन्दोलन ने उसे भरा कि भारत, 'दारुल हरब', अर्थात् मुसलमानो के बसने के अयोग्य है, क्योंकि यहाँ हिन्दू काफिर बहुतायत मे है तथा काफिर ईसाइयो का शासन है। बाद मे मुस्लिम-लीग ने पाकिस्तान की माँग की जिसका यह मतलब निकला कि भारत 'नापाक' अपवित्र है। इस मनोवृत्ति ने अनेक भारतीय मुसलमानो को भारत से काट दिया। महत्त्वपूर्ण यह है कि उसे अनुभव कराया जाए कि यह उसका घर है तथा भारत को वह अपनी मातृभूमि तथा पवित्र-भूमि समझकर प्यार करे भले ही मक्का भी पूजनीय भूमि के रूप रहे। लेकिन यह कैसे हो?

यह समस्या दुहरी है। मुसलमान यह समझता है कि वह विजयी मुस्लिम आक्रान्ताओं का वंशज है। उसका ख्याल है कि भारत पर उसने एक हजार वर्ष तक शासन किया है। वह मानता है कि सिर्फ उसका धर्म ही सही है : सारे गैर-मुसलमान नरक में जाएँगे और मुसलमान सब बहिश्त में। सामान्य हिन्दू एक

मुसलमान को गंदे व्यक्ति, राजनीतिक दृष्टि से अविश्वसनीय तथा धार्मिक असहिष्णु के रूप में देखता है। वह उसे एक ऐतिहासिक शत्रु समझता है।

दोनों ओर इस प्रकार की अधिकाश विचारधारा अर्धसत्यों और गलतफहमियों पर आधारित है। भारत के मुसलमान उतने ही तुर्कों और मंगोलो के वंशधर हैं जितने भारतीय इसाई अंग्रेजों के।

दिल्ली से किया गया 'मुस्लिम प्रशासन' हिन्दू राजपूतों के सहयोग से कही अधिक था बनिस्वत स्थानीय मुसलमानो के। जिस अविभाज्य रूप में मानसिंह और जयसिंह दिल्ली की बादशाहत के आधारस्तम्भ थे उस रूप मे कोई भी धर्मपरिवर्तन किया हुआ व्यक्ति नही था। धर्मपरिवर्तन किये हुए लोगों की केन्द्र मे इतनी गयी-बीती स्थिति थी कि उन्हे दक्षिण के राज्यों की ओर मुँह करना पडा। और विदेशी प्रभाव के दिल्ली के सुन्नियो से अपनी पहचान पृथक् बनाये रखने के लिए दक्षिण के मुस्लिम राजे शिया हो गये।

जहाँ तक बहिश्त-दोजख का झमेला है उसमें कोई भी समझदार आदमी ग़ालिब से सहमत होगा :

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीकत लेकिन
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये खयाल अच्छा है।

हिन्दू इस बात पर झल्लाता है कि मुस्लिम आक्रान्ताओ ने देश को लूटा और लाखों लोगों का जबरन धर्म-परिवर्तन किया। इस पर भी आपत्ति है कि भारतीय मुसलमान इन लुटेरों को अपना नायक माने तथा अंग्रेजो के द्वारा किये गये भारत-विभाजन में सहयोग भी नही देना चाहिए था। इस बात में काफी सार है। लेकिन हम सब जो भूलते हैं वह यह कि इन्ही तुर्क आक्रमणकारियों ने अरबों के लिए नरक निर्माण कर दिया था, बगदाद और दमिश्क को लूट लिया था तथा खिलाफत पर कब्जा कर लिया था। ऐसे दुर्दिन तो सभी कही थे। हाँ सबसे दिलचस्प तो यह है कि चंगेज खान मुसलमान ही नही था। उसका परिवार तो वास्तव में महायान बौद्ध था।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का इस बारे मे बहुत स्वस्थ दृष्टिकोण है। आक्रान्ताओ की ज्यादतियो को न भुलाते हुए भी इस बात पर जोर दिया जाता है कि यह हिन्दुओं की फूट का नतीजा था। दूसरे में क्यों दोष ढूँढा जाए? अपनी ही कमजोरी क्यों न देखी जाए और स्थिति को सुधारा जाए? यदि राजनीतिक 'लोप्रेशर' है तो आक्रमण की आँधी अवश्य आएगी।

यह सही है कि धर्म-परिवर्तन मे जबरदस्ती का बड़ा हाथ रहा है, परन्तु

लालच का भी कम हाथ नही था। शासक की शक्ति और सम्पत्ति में हिस्सा बँटाने को आतुर लोग उनकी शरण में गये। जरूर ही, कभी-कभी पुराने मुसलमानों ने इन नये परिवर्तितों पर आपत्ति की। कारण स्पष्ट था : इसका अर्थ हुआ कि लूटने के लिए हिन्दुओं की कमी और मुसलमान ज्यादा, जिनमें कि लूट को वितरित किया जाना है।

इतिहास की गति भी विचित्र है। इंडोनिशिया के बाली द्वीप मे लोगो को हिन्दू बने रहने के लिए ही उत्साहित किया जाता रहा, ताकि वे यव-द्वीपियों के लिए सूअर मार सकें, जिसे एक मुसलमान के नाते नही कर सकते।

यह तथ्य कि सुदूर के बंगाल और मलाबार तो मुसलमान हो गये लेकिन दिल्ली और लखनऊ हिन्दू ही बने रहे इस बात को प्रदर्शित करता है कि धर्म-परिवर्तन का सम्बन्ध मुस्लिम राज्य की लम्बाई-चौड़ाई से संबंधित होते हुए भी यह बतलाता है कि कुछ भागों में हिन्दू समाज की क्या दशा हो गयी थी। प्राय: जितना समझा जाता है उससे कही अधिक बुद्ध-धर्म ने भारतीय समाज को ठण्डा कर दिया था। उनके अविवाहित जीवन के आग्रह के कारण उत्तर मे जनसंख्या में एक दम कमी आयी। हिंसा के सामने उनके अहिंसा के आग्रह ने हमे गतिहीन कर दिया। मध्य-युग में जाति-प्रथा हिन्दुओं के लिए श्रेष्ठ और सबसे बडी सुरक्षा थी, वही उनका दुर्ग था। बौद्धों को जाति के नकारने से इस क्रूर ससार में बौद्ध जनता अपनी जड़ से कट गयी। मध्य एशिया के केवल सोलह लुच्चों ने नालन्दा के विश्वविद्यालय को खाक कर दिया और हजारों भिक्षुओं तथा विद्वानों की हत्या कर दी।

इसके अलावा धर्म-परिवर्तन का एक कारण था इस्लाम का तात्त्विक आकर्षण, जो कि सार्वजनीनता के साथ-साथ सरल भी था। यह एक विशद प्रवाह था जिसमे विभिन्न कारणों से विभिन्न लोग तैरना चाहते थे। अभी गत शताब्दी तक इसका आकर्षण इतना था कि नैपोलियन तक मिस्र की अपनी समस्त सेना के साथ इस्लाम धर्म-अंगीकार करने की सोचने लगा। वह सुन्नत तक के लिए तैयार था। वह तो संकीर्ण मुसलमानों द्वारा शराब की पाबंदी थी जिसने मेरी फ्रेंच को मुसलमान होने से विमुख किया।

जहाँ तक मुसलमानों की अंग्रेज-भक्ति है, उसकी स्थिति इतनी आसान नही है। कर्नाटक की तीन लड़ाइयों में अंग्रेजो को मुस्लिम नवाबों का सामना करना पड़ा। प्लासी का युद्ध ढाका के नवाब और अंग्रेजों के बीच लड़ा गया। वह टीपू सुल्तान ही था जिसने अंग्रेजों को नाकों चने चबवाए, बल्कि उसने नेपोलियन तक को अंग्रेजो के विरुद्ध लड़ने के लिए आमन्त्रित किया था। (नेपोलियन

मिस्र गया हो इस ख्याल से था कि भारत जाएगा। लेकिन यदि अबूकर के युद्ध मे उसकी नौसेना न हारती तो समव था कि अंग्रेजों को उखाड फेंकने मे वह भारत की मदद करता।) सन १८५७ के स्वतत्रा-सग्राम में भी मुसलमान, हिन्दुओं से अनुपात मे अधिक थे। जो क्रान्तिकारी लाल-किले मे घुस पडे थे उनके हाथो मे भी मुसलमानों का चाँद-तारा वाला हरा झण्डा ही था। सन १९२१ के आन्दोलन में भी मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा कम सक्रिय नही थे। वास्तव मे तो अंग्रेज हिन्दू विरोधी सन १९०५ के बाद ही हुए जब उन्होंने बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन किया और भारत की स्वाधीनता की माँग उठायी। इसके पहले तक वे हिन्दू-विरोधी से अधिक मुस्लिम विरोधी थे।

अवश्य ही मुसलमान यह तर्क कर सकते हैं कि भारत से मुस्लिम-प्रभाव को विनष्ट करने मे हिन्दुओं ने अंग्रेजो का उपयोग किया। जिस समय अंग्रेज यहाँ आये उस समय भारत पर इस्लामी संस्कृति की मोटी पर्त पडी हुई थी, और तो और शिवाजी द्वारा जयसिंह को लिखा गया पत्र तक फारसी में लिखा गया था। अंग्रेजो के जाते ही सब समाप्त हो गया। उसका स्थान कुछ तो पश्चिमी आचार-विचार ने ले लिया और कुछ हिन्दू पुनर्जागरण ने। स्वयं हिन्दू पुनर्जागरण ही उन ईसाई मिशनरियो का ऋणी है जिन्होंने प्राचीन हिन्दू शास्त्रों पर शोध किया।

पूर्व-अंग्रेज युग में राजनीतिक शक्ति के दो आधार थे, भूमि और सेना। मुसलमान, योद्धा और भू-स्वामी दोनो ही रूप मे प्रमुख था। लेकिन अंग्रेजी प्रशासन में सेना मे हिन्दू प्रमुख हो उठा। यह प्रमुखता तब और भी बढी जब आधुनिक युद्ध-कला, शारीरिक शक्ति की अपेक्षा कुछ और हो गयी। और भूमि, अपव्ययी मुसलमानों के हाथ मे निकल कर अर्थ लोलुप हिन्दुओं के हाथो मे जाने लगी। जब जमींदारी-उन्मूलन हुआ तब मुस्लिम जमींदार अनुपात मे ज्यादा खतम हुए बनिस्वत हिन्दू जमींदार के।

इस बीच अंग्रेजो ने लोकतंत्र की शुरुआत की, जो कि प्रशासन की एक ऐसी प्रणाली है जो सिरों की गणना तो करती है परन्तु उन्हे तोडती नही। इसमें भी कई बार मुसलमानों से अधिक हिन्दू सिर ही होते। इन सबसे ऊपर शक्ति के स्रोत मे शिक्षा और व्यवसाय का महत्त्व बहुत अधिक हो गया और ऐतिहासिक कारणों की सबब इन दोनों में ही हिन्दुओं ने अग्रता मार ली। शक्ति का हिन्दुओं के हाथों में जाना निर्णायक सिद्ध हुआ। अंग्रेज तो आये और गये लेकिन सर्वोपरि सत्ता को इस प्रक्रिया ने भारत मे हिन्दुओं को सौंप दिया।

ऐसा होता है इतिहास का खेल और यह भी ऐसा खेल जिसमें निश्चित लाभ है। मुस्लिम-प्रशासन के पूर्व हम अनेक जातियाँ थे, मूल के थे, जनजातियाँ थे।

यह मुसलमान थे जिन्होंने इस रूप में 'हिन्दू' परिभाषित दिया। इसी प्रकार विभिन्न जातियों, श्रेणियों, वर्गों, तथा राज्यों से 'भारतीय' बनाया।

आज, सारे अन्तर्विरोधों के बावजूद दो देशों के बाहर किसी भी आयोजन में भारतीय और पाकिस्तानी में अन्तर नही किया जाता। हम लोग दो राज्य—क्षमा करें, अब हम तीन राज्य हैं—लेकिन हम एक ही देश हैं तथा लोग भी एक ही हैं। हमारी भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और रक्त-सम्बन्धी एकता ने हमारे एक ही लोग होने की छाप लगा रखी है। हम भले ही गहरे मित्र न हों, परन्तु समान रक्त के भाई-बन्द हैं और कोई भी, कैसी भी लड़ाई इस वास्तविकता को नही झुठला सकती है। इसलिए अपने घरेलू झगडों के लिए हमें बन्धुभाव वाले निदान खोजने चाहिए।

कलमा, रोज़ा, नमाज़, ज़कत और हज—मुसलमान के ये पाँच अनिवार्य होते हैं और इन इस्लामी आचरणों के पालन की सदा उन्हे स्वतन्त्रता रही है (सिर्फ इसका एक ही अपवाद है जब अकबर ने यात्रा के संकटो के कारण हज पर पाबन्दी लगा दी थी) खतना से हिन्दू चौंकता है तथा बहु-विवाह से उसे भय लगता है, क्योंकि इसका अंतिम नतीजा होगा भारत में मुसलमानों का बाहुल्य। थोड़े से विवेक और प्रयास से ये बातें सुलझ तो सकती हैं।

खतना, मुसलमानों की नही सामी लोगों की चीज रही है। इसका प्रचलन अरबों मे ही नही बल्कि उनके जानी दुश्मन 'को-सेमेटिक' यहूदियों मे भी है। इस्लाम के विस्तार के समय, ऐसे युग रहे हैं जब धर्म-परिवर्तन के लिए खतना आवश्यक होती थी, और ऐसे भी, जब नही। (यह इस पर निर्भर करता था कि उन्हे नये परिवर्तित धीरे-धीरे चाहिए या तेजी से।) अमरीका में तो खतना अब आम बात है। नवजात बच्चों की खतना तो अस्पताल से बाहर आने के पूर्व ही कर दी जाती है। इसका आशय स्वच्छता है, साथ ही प्रदीर्घ मैथुन सुख के लिए भी। अतः, अप्राकृतिक लगने पर भी किसी को चौकने को जरूरत नही है।

बहुविवाह भिन्न बात है। एक सभ्य समाज मे इसका कोई स्थान नही हो सकता क्योंकि यह नारियों के अधिकारो का गंभीर उल्लघन है। फिर भी भारत में अनेक मुसलमानों ने इसे अपने धर्म का अंग माना है और भारत सरकार द्वारा किसी भी परिवर्तन का घोर विरोध किया है।

इसका एक रास्ता है कि पाकिस्तान की ही भाँति यहाँ भी संसद मुस्लिम विवाह कानून में परिवर्तन करे जिसके अनुसार सभी क्षेत्रों के लिए एक पत्नी प्रथा आवश्यक हो जाए। इससे अलगाववादियों की हवा भी खसक सकेगी,

क्योंकि इसकी इस्लाम के साथ संगति भी बैठती है। भारत को पाकिस्तान की बनिस्बत अधिक इस्लामपरस्त होने की आवश्यकता नहीं है।

हिन्दू इस्लाम के बारे में बहुत कम परिचित है और मुसलमान हिन्दू धर्म के बारे में शून्य हैं, इसलिए विषय की परिचिति को संगठित किया जाना चाहिए। धार्मिक-शिक्षाओं का एक प्रतिनिधि संकलन तथा धार्मिक-महापुरुषों की जीवनियाँ हमारे युवकों की धार्मिक शिक्षा का हिस्सा होनी चाहिए। यह अमरीकी शिक्षा पद्धति थी जिसने अपने में कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, यहूदी, रूसी, इतालवी और आइरिश को समेटा और देशभक्त अमरीकी नागरिक पैदा किया। कोई कारण नहीं कि भारतीय शिक्षा-पद्धति को भी इसी प्रकार भारत की सेवा के लिए उपयुक्त नहीं बनाया जा सकता।

उदाहरण के लिए रामायण और महाभारत को भारतीय संस्कृति की उदात्त शिक्षा के रूप में लिया जाना चाहिए न कि 'धार्मिक', जिनका सम्बन्ध किसी धार्मिक जाति विशेष से हो। रामायण और महाभारत भारत के लिए वही हैं जो अंग्रेजी वाले समाज के लिए शेक्सपीयर और डिकन्स हैं।

हिन्दू-मुस्लिम विवाह भी कुछ सहायक हो सकते हैं। हालांकि महात्मा गांधी भिन्न ही सोचते थे। इस बीच शताब्दियों से इन मिश्रित विवाहों में, चाहे वह लड़का या लड़की हिन्दू हो रहा हो, उनका पालन एक मुसलमान की ही भाँति होता रहा है। पंडित सातवलेकर, प्रकाण्ड संस्कृतज्ञ, जिनका निधन अभी सौ वर्ष की आयु में हुआ, कहा करते थे कि मिश्रित विवाहों की सन्तानें आज पर्यन्त हिन्दू के रूप में ही पालित हों। चूंकि आज दोनों ही स्थितियाँ स्वीकार नहीं की जाएँगी इसलिए इन मिश्रित जोड़ों से पहले ही पूछ लिया जाना चाहिए कि उनकी सन्तानों का पालन किस रूप में होगा? वे मजे से, चाहें तो दोनों के ही पर्व-त्योहार मनाएँ और इस प्रकार दोनों धर्मों की अच्छाइयाँ अपना लें।

'इस्लामी हरे परचम' को देखकर मुसलमान विभोर हो उठता है। तिरंगे से वह जरा भी प्रभावित नहीं है। उसे नहीं पता कि यह तिरंगा—फ्रेंच क्रांति के झण्डे की अनेक नकलों में से एक है और हिन्दू को भी यह प्रभावित नहीं करता है। राम से लेकर प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह तक का जो परम्परागत हिन्दू-ध्वज है, वह तो नारंगी वर्ण का भगवाँ-ध्वज है। हाँ, मजेदार बात यह है कि पैगम्बर हजरत मुहम्मद इस हरे झण्डे के बारे में कुछ नहीं जानते थे। हजरत मुहम्मद अपने जीवन-काल में नाना प्रकार के—जिनमें भगवाँ भी था, झण्डे लेकर चले, परन्तु हरा कभी नहीं। सन ३१ के कराची अधिवेशन में कांग्रेस की राष्ट्रीय झण्डा समिति ने एक स्वर से 'केसरिया भगवाँ' झण्डे को अप-

नाने की सिफारिश की थी। इस समिति के सदस्य थे नेहरू, पटेल, आजाद, तारा सिंह, काका कालेलकर, हार्डीकर और पट्टाभि सितारामैया। अतः भगवाँ, हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही स्वीकार्य होना चाहिए।

मेरा कथन फिजूल भी लग सकता है। पर मुझे कहना चाहिए कि आवश्यक से कहीं ज्यादा बाहरी बातें विभाजित करती है; विचारों से ज्यादा भाषा विभाजित करती है। चीज से ज्यादा नाम विभाजित करता है। कल्पना कीजिए की एक ही ढंग के नाम होने पर क्या कहीं हिन्दू-मुसलमान रह जाएंगे ? मैं कहूँगा कि, नहीं। कवि ने जब पूछा—'नाम में क्या धरा है ?" तो मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ : सब कुछ—या लगभग सब कुछ। हिन्दुओं से मुस्लिम नाम अपनाने के लिए कहने की अपेक्षा मुसलमानों से हिन्दू नाम अपनाने के लिए हम नहीं कह सकते। यह केवल आशा ही की जा सकती है कि पिछले कुछ दशकों में जिस प्रकार बंगाली नाम भारत के सारे हिन्दुओं में प्रचलित हो गये उसी प्रकार अ-जाति-सूचक भारतीय नाम जैसे अनिल, सुनील, मोती, गुलाब आदि अधिक से अधिक भारतीयों द्वारा अपनाये जाएँ। इतिहास में उदाहरण है जब सामूहिक नाम-परिवर्तन हुए हैं। जर्मन 'बर्बरों' ने जब इटली पर धावा बोला तो चुपचाप रोमन नाम अंगीकार कर लिये। जब मध्य युगों में जर्मन शाखा के लोग पहुँचे तो इतालवी और फरांसीसी लोगों तक ने जर्मन नाम रख लिये। चीनी में मंगोली नामों की बर्बरता छुपाने के लिए उनका चीनीकरण कर लिया। पहले से ही कई जगह मुसलमानों के प्यार का नाम हिन्दू होता है। पूर्वी बंगाल के 'मोहन मियाँ' के बारे में सभी ने सुना है गुजरात में तो 'बब्रू भाइयों' की कमी नहीं है। और इंडोनेशिया संसार का सबसे बड़ा इस्लामी राष्ट्र तो इस तरह के नामों से भरा पड़ा है।

मुसलमान उर्दू से नत्थी है, लेकिन घोर फारसी प्रधान उर्दू का भारत में कोई भविष्य नहीं है। उर्दू के कवि जोश मलीहाबादी, जो विभाजन के बाद पाकिस्तान गये, के अनुसार पाकिस्तान मे तो उर्दू का तो और भी भविष्य नहीं है। और कोई कारण नहीं है कि सरल उर्दू मे श्रेष्ठ साहित्य को देवनागरी लिपि में क्यों नहीं रखा जा सकता। इनका चयन हिन्दी के पाठ्यक्रमों में भी रखा जा सकता है। हिन्दी के एक परिवर्तित स्वरूप में तो उर्दू जीवित रह सकती है, जैसे कि अवधी, मगधी, मैथिली और भोजपुरी आदि।

भारतीय मुसलमान की विषमता यह है कि जब कि मिस्र, ईराक, सीरिया, लेबनान, अल्जीरिया और तुर्किस्तान बड़ी तेजी से आधुनिक हो रहे हैं और वह मध्ययुगीन इस्लामी कोटर मे ही बन्द रहना चाहता है। किसी मौलवी को यह

देखकर आश्चर्य होता है कि 'हिन्दी' मौलवी—भारतीय मुसलमानों को पूरे पश्चिमी एशिया में यही कहा जाता है—आज भी अपने इस्लाम का एक आवश्यक हिस्सा मानकर डाढ़ी बढ़ाता है। ये ही भारतीय मौलवी लोग नयी दिल्ली की पार्लियामेन्ट स्ट्रीट के रिजर्व बैंक की इमारत के बाहर दो यक्ष मूर्तियों को देखकर स्तम्भित रह गये थे। इन्हें पता नहीं कि इंडोनेशिया के मुस्लिम राष्ट्रपति के आवास 'मेरडेका महल' के प्रवेश द्वार पर ही धनुष की प्रत्यंचा खींचते हुए राम बने हैं। और इन्हें यह भी ज्ञात नहीं होगा कि इंडोनेशिया की विमान-सेवा 'गरुड' है तथा इंडोनेशियाई राष्ट्रीय बैंक 'कुबेर' जो कि दोनों ही हिन्दुओं के पौराणिक पात्र हैं।

न यह जानते हैं कि 'गीता' पश्चिमी एशिया के मुस्लिम क्रान्तिकारियों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय है, इसीलिए तुर्किस्तान ने 'विप्लवी साहित्य' कहकर इस पर रोक लगा दी थी। बाद में यह पाबन्दी भारत-सरकार के प्रतिवेदन के कारण हटायी गयी। कुछ सीरियाई मनीषी हैं जो वेदान्त का अध्ययन कर रहे हैं और योगासन करते हैं। भारतीय मुसलमान को मुस्लिम भारतीय होना है और उसे इस्लाम और भारत के बारे में संयत दृष्टिकोण अपनाना है। भारतीय और पाकिस्तानी मुसलमानों की बातें अरबों को मनोरंजक लगती हैं। मिस्र के बादशाह फारुख के पास एक प्रिय मजाक था। आगन्तुक से सहसा प्रश्न कर वे उसे चकित करते हुए पूछते : "क्या आपको मालूम है कि इस्लाम का जन्म कब हुआ ?" और तब अट्टहास करते हुए कहते, "बेशक १४ अगस्त १९४७ को।"

बेशक हमें अपनी समस्याओं के सुलझाने के लिए जिस चीज की जरूरत है, वह है—हास्य। स्वस्थ और साफ-सुथरा मजाक, जो कि समय और परिस्थिति के जालों को झाड़ पोंछेगा।

* * *

११

अन्तिम हँसी

गिरफ्तारी के समय हममें से अनेक पूर्ण विलय के पक्ष में नहीं थे। हम लोग 'मन्द जल्दी' के पक्ष में थे। इसी समय एक मित्र ने जिसे वह 'कूडा-सिद्धान्त' कहते थे, प्रतिपादित किया। उन्होंने बताया कि कांग्रेस कूडे का बडा भारी ढेर है और इसका सामना इससे बड़े कूडे के रूप में एक होकर कर सकते हैं। आश्चर्य कर रहा था कि किस प्रकार एक कूडे के ढेर से दूसरा अच्छा हो सकता है। मैंने विरोध प्रकट किया, "हम कूडा नही है।" सचाई तो यह थी कि हम विरोध में बने रहे और भुगता, जब कि आसानी से कांग्रेस की बाजा-गाडी पर हम भी सवार हो सकते थे। यह बताता है कि कार्यकर्ता तथा नेता सभी स्तरों पर हम कांग्रेस से बेहतर हैं। हम कूड़ा नही बल्कि विभिन्न सुगन्ध वाले विभिन्न फूल है। इसलिए मैंने उन्हें सुझाया कि वह अपने कूडा सिद्धान्त का नाम 'गुलदस्ता-सिद्धांत' कर दें। उन्होंने जानना चाहा कि वह 'गुलदस्ता' क्या होता है? मैंने स्पष्ट किया—'पुष्प-गुच्छ !' और सक्षेप में यही तो जनता पार्टी हुई।

यह ठीक है कि एक समय था जब बी० एल० डी० के कुछ लोग थोडा असहमति का राग अलापने पर डटे हुए थे। लेकिन इस बात की प्रतिक्रिया इतनी तीव्र थी कि इसमे शक नही रह गया था कि आधी बी० एल० डी० को लेकर चार पार्टियों में साढे तीन विलय कर जाएँगी। उस विरोधी स्वर का अतिरिक्त लाभ यह हुआ कि सरकार आश्वस्त हुई कि विरोध एक नहीं हो पाएगा। तब शायद चुनाव भी न हो पाते।

२५ मई १६७६ को चार पार्टियों के विलय की जयप्रकाश की घोपणा से बन्दियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उस दिन सम्मिलित भोज हुआ तथा बन्धुभाव वाले भापण हुए। हम सबने तब तक एक विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर किये कि हम इस नयी पार्टी में शामिल होंगे तथा सम्पूर्ण निष्ठा से उसके लिए कार्य करेंगे।

जब यह विज्ञप्ति 'जनता' में प्रकाशित हुई तो सरकार घबरा गयी कि जेल से कैसे ऐसी विज्ञप्ति बाहर आ सकी ? अतः सजा के तौर पर जगन्नाथराव जोशी को अम्बाला भेज दिया गया और थोड़े दिनों बाद समर गुहा को हिसार। उन दोनों के हस्ताक्षर—सब हस्ताक्षरों के ऊपर थे। जोशी जी तो अम्बाला चले गये परन्तु समर गुहा ने अस्वीकार यह कह कर किया कि वह दिल के मरीज हैं और हिसार मे दवा-दारू का उचित प्रबन्ध नही है। सरकार किसी सासद को उठाकर तो ले नही जा सकती थी, सो वह ठंडी पड़ गयी।

सत्ता पतित ही नही करती अन्धा भी बनाती है। जो कुछ देखा उस पर सरकार विश्वास ही नही कर सकी। उनका ख्याल था कि 'संघर्ष' का जन-आह्वान जे० पी० जैसे कुछ गुमराह व्यक्तियों की तथा थोड़े से अखबारों की हरकत है। मुझे अंग्रेजों की धारणा स्मरण आयी कि स्वतन्त्रतापूर्व की कांग्रेस कुछ उत्पातियों का संगठन है। उनका तर्क होता था : "मुसलमान उनके साथ नही हैं, हरिजन साथ नही हैं, राजा साथ नही है और गरीब साथ नहीं हैं।" तो उनके साथ कौन ? बेशक कोई नही ! नवम्बर १९७६ के 'सत्याग्रह' के कारण सरकार को मानना पड़ा कि १९७४-७५ का जनरोष केवल कुछ उत्पातियों की ही हरकत नहीं थी। जब यह स्पष्ट हो गया कि यह श्रीमती जी डिक्टेटर हो गयी हैं तब लोगों के द्वारा उनकी तुलना हिटलर से की जाने लगी।

१९७६ की गर्मियों में सरकार ने विदेशी संवाददाताओं की पाबन्दी में कुछ ढील दी। क्या इसका मतलब इमरजेंसी में भी थोड़ी ढील नहीं था ? कइयों ने पूछा, हालांकि कि मैं बहुत आश्वस्त नही था। विदेशी संवाददाताओं को यहाँ न रहने देकर सरकार अपने को भारी भूल मे रखे हुए थी। साथ ही कुछ तेज-तर्रार विदेशी अखबार ऐसी गुप्त बातें और सूचनाएँ प्रकाशित कर पा रहे थे जो प्रतिष्ठान को धक्का पहुँचा रहे थे। विदेशी संवाददाताओं के लिए दरवाजे खोल कर सरकार अपने को उदार दिखाने की चेष्टा कर रही थी। साथ ही वह इस कोशिश में भी थी एक बार ये यहाँ आ भर जाएँ तब कुछेक के साथ एक ही *दस्तरखान पर शराब-कबाब का हिसाब भी जमा लिया जाएगा।*

और लगभग हुआ भी ऐसा ही। अब भारत के बारे में बहुत-सा प्रकाशित होने लगा और बहुत थोड़ा होता जो सरकार के विरोध में जाता था। यहाँ तक हुआ कि जब चुनावों की घोषणा की गयी तो पश्चिम के अधिकांश बड़े पत्रों ने श्रीमती जी की वापसी की घोषणा की। और जब चुनाव के नतीजे घोषित हुए तो वे स्तम्भित रह गये।

जब महीने वर्ष में परिणत होने लगे तो हम सोचने लगे कि आखिर कब

तक ! इसके बाद क्या ? कई सोचते थे कि मार्च ७७ मे चुनाव होंगे जबकि मेरा ख्याल था कि देवी जी चुनाव नही कराएँगी, क्योंकि वह जीत नही सकेंगी । एक वर्ष के लिए चुनाव अवधि की वृद्धि के लिए किया गया संविधान का संशोधन, इस धारणा की पुष्टि करता था । लेकिन जब मई में अशोक मेहता और सर्वश्री पीलू मोदी, समर गुहा और मेजर जयपाल सिंह (सी० पी० आई० एम०) को क्रमशः १६७६ के अक्तूबर, नवम्बर और दिसम्बर के शुरू में छोडा गया तो ऐसा लग गया कि हम अब जेल में न आजीवन और न ही दस वर्ष रहने जा रहे हैं । और तब संगठन कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी सिकन्दर वख्त तथा इन्दिरा कांग्रेस के विगठित संसदीय दल के सेक्रेटरी श्री रामधन ३१ दिसम्बर '७६ को छोडे गये । जाहिर है कि वह इन सब लोगों को नहीं छोड सकती थी और न ही यह मौका दे सकती थीं कि ये लोग देश मे देवी जी की स्थिति ही साफ कर दे । उनके छोड़ने के ढंग का मतलब ही था कि इन्हें चुनाव-प्रचार के लिए कम से कम समय मिले । तभी आसन्न चुनाव एक दूरागत संभावना लगने लगे । और तब मार्च '७७ के बारे में कुलदीप नैयर की रिपोर्ट आयी ।

वह १८ जनवरी की शाम थी । हम रात्रि-भोज के बाद विश्राम कर रहे थे कि दूसरे वार्ड का एक लम्बरदार आया और उसने बताया कि वी० बी० सी० ने घोषणा की कि श्री मोरार जी देसाई तथा श्री लालकृष्ण अडवानी छोड़ दिये गये हैं और भारत सरकार ने लोकसभा के चुनावों का निर्णय ले लिया है । इन उन्नीस महीनों में पहली बार प्रसन्नमन से मैंने इस समाचार की पुष्टि के लिए 'आकाशवाणी' लगाया । जी हाँ, प्रधानमन्त्री लोकसभा के चुनाव की घोषणा कर रही थी । और चुनावों के बारे में मैं बड़े सुखद रूप मे गलत सिद्ध हुआ था ।

अब हमे लगा कि हम किसी भी क्षण छोड़े जा सकते हैं । जब भी जेल का बाहरी फाटक चरमराता खुलता होता तभी हमारे कान 'श्रृंगिका' (एन्टीना) बन जाते कि हमारी ओर बढ़ते जेल अधिकारी के कदम संभावित समाचार लेकर आ रहे हैं । आखिरकार जब वे हमे एक रात में पकड़ सकते थे तो आसानी से एक रात में छोड भी सकते थे । यही तो अंग्रेज किया करते थे । लेकिन एक बात हम यह भूल रहे थे : अंग्रेज अपने सारे दोषों के बावजूद भद्र लोग थे, लेकिन १६७७ की नयी दिल्ली में बैठे 'संविधान-विरोधी' नही । तभी तो एक-एक दो-दो करके हफ्तों मे जाकर लोग छोडे गये । यह प्रक्रिया तब तक पूरी नहीं जब तक कि चुनाव में इन 'सविधान-विरोधियों' का सफाया नहीं हो गया । यह सब बहुत शोभनीय नही था । सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी, तथा आज भी है कि देवीजी ने चुनाव करवाये ही क्यों ?

इमरजेंसी के विरुद्ध हैं तो 'समाचार' ने तो यह खबर दाब दी लेकिन 'राइटर' ने दुनिया भर में इसे फैला दिया। प्रधान-मंत्री को घोषित करना पड़ा कि राष्ट्रपति अस्वस्थ हैं और वह वापस बुला लिये गये। आकस्मिक तथा अतार्किक ढंग से राष्ट्रपति की मृत्यु के पूर्व क्या कनफूसी हुई यह अभी भी रहस्य है। लेकिन यह स्पष्ट हो गया कि देवी जी की खिचड़ी पक चुकी थी। बहरहाल कुछ भी करने के लिए बहुत देर हो चुकी थी। जैसा कि एक कार्टूनिस्ट ने खाका खींचा कि ज्योतिषी लोग भी गैमावदलू हो गये थे।

नवम्बर १९७७ में इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण के बारे में 'समाचार' की टिप्पणी अखबारों में छपी। और बातों के अलावा यह कहा गया :

> नयी दिल्ली : "नवम्बर २० (समाचार)—'आर्गेनाइजर' के सम्पादक श्री के० आर० मलकानी अपनी पुस्तक 'द' मिडनाइट नॉक' में लिखते हैं—"जब राष्ट्रपति ने कुआला लुम्पूर की एक कांफ्रेंस में कहा कि वह इमरजेंसी के विरुद्ध हैं तो 'समाचार' ने तो यह खबर दाब दी लेकिन 'राइटर' ने दुनिया भर में इसे फैला दिया।"
>
> "प्रधान मंत्री (श्रीमती गांधी) को घोषित करना पड़ा कि राष्ट्रपति अस्वस्थ हैं और वह वापस बुला लिये गये। आकस्मिक तथा अतार्किक ढंग से राष्ट्रपति की मृत्यु के पूर्व क्या कनफूसी हुई यह अभी भी रहस्य है।"
>
> "राष्ट्रपति के साथ एक भारतीय संवाददाता कुआला लुम्पूर गया था, बता रहा था कि श्री अहमद ने वहाँ कोई प्रेस कांफ्रेंस नहीं की।"
>
> "श्री अहमद की मृत्यु के थोड़ी ही देर बाद श्रीमती गांधी ने अस्वीकार किया कि इमरजेंसी को लेकर उनमें और स्वर्गीय राष्ट्रपति में कोई मतभेद था।"

...मैंने जो कुछ ऊपर कहा उसे फिर दुहराता हूँ। राष्ट्रपति विदेशी संवाद-... कुआला लुम्पूर में मिले थे और बताया था कि वह इमरजेंसी के ... पत्रों में यह प्रकाशित भी हुआ। 'समाचार' के एक संवाद-... में यह मालूम हुआ तो उसने यह खबर भारत भेजी। दिल्ली ... फल विदेश मन्त्रालय को अनुमोदन के लिए

... का प्रश्न है तो मैं उन्हें ही उद्धृत करना ...।"

... के कांड से राष्ट्रपति दुःखी ... की भारी हत्या हुई थी, नहीं

मैं समझता हूँ कि चूँकि करवाने थे इसलिए चुनाव करवाये। डिक्टेटर लोग चुनाव करवाते हैं, ताकि अपने प्रशासन को लोकप्रिय होने का आभास दिया जा सके। लोगों को मतपत्रों से वंचित रखने का अर्थ है उन्हे गोलियो के प्रयोग के लिए बाध्य करना। इसलिए श्रीमती जी बहुत उत्सुक थीं कि शातिपूर्ण ढंग से सरकार परिवर्तन की आशा पूरी तरह लोग खो बैठें और हताश हो जाएँ। यह ध्यान देने की बात है कि वह हर कडे भाषण के बाद एक मधुर-मधुर स्पीच भी दिया करती थीं। 'जैसे ही सम्भव होगा' इमरजेंसी हटा ली जाएगी का भी वह बराबर आश्वासन देती जाती थी। और एक न एक दिन उन्हे अपना वचन निवाहना ही था।

फिर भी उन्होंने १९७७ का वसन्त ही क्यों चुना? मेरा ख्याल है, इसलिए कि १९७५-७६ की लगातार अच्छी वर्षा के बाद १९७७ में वर्षा-चक्र गड़बड़ा जाए। चूँकि लोग शान्त थे इसलिए देवी जी ने सोचा कि वे सन्तुष्ट हैं। लेकिन देवी जी यह प्राचीन आप्त-वाक्य भूल गयी कि मनुष्य सिर्फ भोजन-भट्ट ही नही है।

और फिर गुप्तचर एजेन्सियाँ भी तो थीं जो उन्हें बता रही थी कि वह चुनावो में मार ले जाएँगी। ये एजेंसियाँ भी समझ चुकी थी कि सरकार अनुकूल ही सुनना चाहती है, कडवी सचाई नही। इसलिए जब देवी जी चुनाव के लिए राजी हुई तो सब उनकी महान् लोकप्रियता की विरुदावलियाँ गाने लगे, किसी ने भी उनके आसन्न पतन का संकेत तक नही दिया। इमरजेंसी के दर्म्यान इन एजेंसियों ने कुछ वी० आई० पी० सज्जनों के संकेत पर उनके सहयोगियों के विरुद्ध मसाला तैयार कर डाला। चुनावों मे भावी जीत, इसी प्रकार की एक सुखद काल्पनिकता थी।

इस मामले में भी कार्टर और भुट्टो ने पहल लेकर स्थिति हथिया ली थी। नये अमरीकी राष्ट्रपति पुनः जनमत प्राप्त करने की सोच रहे थे। और जब एक बार भुट्टो ने चुनाव घोषित कर दिये तब भला इन्दिरा क्या भुट्टो से भी गयी बीती सिद्ध होती? जब सारे दरबारियो ने भारी जन-समर्थन का आश्वासन दिया तो 'जारीना' चुनाव के लिए तैयार हो गयी। 'रा' के समस्त सूचना 'जाल' के बाद श्रीमती जी लोगों के तेवर से उसी प्रकार अनभिज्ञ थी जिस प्रकार की फरांसीसी क्रान्ति के समय मेरी एन्तोयीनेत थी जिसने मूल्य-वृद्धि के विरुद्ध महिला प्रदर्शनकारियों से कहा था : "यदि रोटियाँ नही हैं तो केक-बिस्कुट क्यो नही खाती हैं?"

जब कुआला लुम्पूर में राष्ट्रपति अहमद ने एक प्रेस-कांफ्रेंस में कहा कि वह

इमरजेंसी के विरुद्ध हैं तो 'समाचार' ने तो यह खबर दाब दी लेकिन 'राइटर' ने दुनिया भर में इसे फैला दिया। प्रधान-मंत्री को घोषित करना पड़ा कि राष्ट्रपति अस्वस्थ हैं और वह वापस बुला लिये गये। आकस्मिक तथा अतार्किक ढंग से राष्ट्रपति की मृत्यु के पूर्व क्या कनफ्रूसी हुई यह अभी भी रहस्य है। लेकिन यह स्पष्ट हो गया कि देवी जी की खिचडी पक चुकी थी। बहरहाल कुछ भी करने के लिए बहुत देर हो चुकी थी। जैसा कि एक कार्टूनिस्ट ने खाका खींचा कि ज्योतिषी लोग भी खेमावदलू हो गये थे।

नवम्बर १९७७ मे इस पुस्तक के अंग्रेजी सस्करण के बारे में 'समाचार' की टिप्पणी अखबारों में छपी। और बातों के अलावा यह कहा गया :

> नयी दिल्ली : "नवम्बर २० (समाचार)—'आर्गेनाइजर' के सम्पादक श्री के० आर० मलकानी अपनी पुस्तक 'द' मिडनाइट नॉक' में लिखते हैं—"जब राष्ट्रपति ने कुआला लुम्पूर की एक कान्फ्रेंस मे कहा कि वह इमरजेंसी के विरुद्ध हैं तो 'समाचार' ने तो यह खबर दाब दी लेकिन 'राइटर' ने दुनिया भर में इसे फैला दिया।"
>
> "प्रधान मत्री (श्रीमती गांधी) को घोषित करना पडा कि राष्ट्रपति अस्वस्थ हैं और वह वापस बुला लिये गये। आकस्मिक तथा अतार्किक ढंग से राष्ट्रपति की मृत्यु के पूर्व क्या कनफ्रूसी हुई यह अभी भी रहस्य है।"
>
> "राष्ट्रपति के साथ एक भारतीय संवाददाता कुआला लुम्पूर गया था, बता रहा था कि श्री अहमद ने वहाँ कोई प्रेस कान्फ्रेंस नही की।"
>
> "श्री अहमद की मृत्यु के थोड़ी ही देर बाद श्रीमती गांधी ने अस्वीकार किया कि इमरजेंसी को लेकर उनमे और स्वर्गीय राष्ट्रपति में कोई मतभेद था।"

मैंने जो कुछ ऊपर कहा उसे फिर दुहराता हूँ। राष्ट्रपति विदेशी संवाददाताओं से कुआला लुम्पूर में मिले थे और बताया था कि वह इमरजेंसी के विरुद्ध थे। विदेशी पत्रों मे यह प्रकाशित भी हुआ। 'समाचार' के एक संवाददाता को जब बाद में यह मालूम हुआ तो उसने यह खबर भारत भेजी। दिल्ली में 'समाचार' ने इस खबर की नकल विदेश मन्त्रालय को अनुमोदन के लिए भेजी जो कि पास नहीं की गयी।

जहाँ तक श्रीमती जी की अस्वीकृति का प्रश्न है तो मैं उन्हें ही उद्धृत करना चाहूँगा कि "कोई मेरा विश्वास नही करता।"

यह अब कहा जा सकता है कि तुर्कमान-गेट के काड से राष्ट्रपति दुःखी थे। जब उन्हें मुजफ्फरनगर, जहाँ कि मुसलमानो की भारी हत्या हुई थी, नही

मैं समझता हूँ कि चूंकि करवाने थे इसलिए चुनाव करवाये। डिक्टेटर लोग चुनाव करवाते हैं, ताकि अपने प्रशासन को लोकप्रिय होने का आभास दिया जा सके। लोगों को मतपत्रों से वंचित रखने का अर्थ है उन्हें गोलियों के प्रयोग के लिए बाध्य करना। इसलिए श्रीमती जी बहुत उत्सुक थी कि शांतिपूर्ण ढंग से सरकार परिवर्तन की आशा पूरी तरह लोग खो बैठें और हताश हो जाएं। यह ध्यान देने की बात है कि वह हर कड़े भाषण के बाद एक मधुर-मधुर स्पीच भी दिया करती थी। 'जैसे ही सम्भव होगा' इमरजेंसी हटा ली जाएगी का भी वह बराबर आश्वासन देती जाती थी। और एक न एक दिन उन्हें अपना वचन निबाहना ही था।

फिर भी उन्होंने १९७७ का वसन्त ही क्यों चुना? मेरा ख्याल है, इसलिए कि १९७५-७६ की लगातार अच्छी वर्षा के बाद १९७७ में वर्षा-चक्र गड़बड़ा जाए। चूंकि लोग शान्त थे इसलिए देवी जी ने सोचा कि वे सन्तुष्ट हैं। लेकिन देवी जी यह प्राचीन आप्त-वाक्य भूल गयी कि मनुष्य सिर्फ भोजन-भट्ट ही नहीं है।

और फिर गुप्तचर एजेन्सियाँ भी तो थी जो उन्हें बता रही थीं कि वह चुनावों मे मार ले जाएँगी। ये एजेंसियाँ भी समझ चुकी थी कि सरकार अनुकूल ही सुनना चाहती है, कड़वी सचाई नहीं। इसलिए जब देवी जी चुनाव के लिए राजी हुईं तो सब उनकी महान् लोकप्रियता की विरुदावलियाँ गाने लगे, किसी ने भी उनके आसन्न पतन का संकेत तक नहीं दिया। इमरजेंसी के दम्यान इन एजेंसियों ने कुछ वी० आई० पी० सज्जनों के संकेत पर उनके सहयोगियों के विरुद्ध मसाला तैयार कर डाला। चुनावों में भावी जीत, इसी प्रकार की एक सुखद काल्पनिकता थी।

इस मामले में भी कार्टर और भुट्टो ने पहल लेकर स्थिति हथिया ली थी। नये अमरीकी राष्ट्रपति पुनः जनमत प्राप्त करने की सोच रहे थे। और जब एक बार भुट्टो ने चुनाव घोषित कर दिये तब भला इन्दिरा क्या भुट्टो से भी गयी बीती सिद्ध होती? जब सारे दरबारियों ने भारी जन-समर्थन का आश्वासन दिया तो 'जारीना' चुनाव के लिए तैयार हो गयी। 'रा' के समस्त सूचना 'जाल' के बाद श्रीमती जी लोगों के तेवर से उसी प्रकार अनभिज्ञ थी जिस प्रकार की फरांसीसी क्रान्ति के समय मेरी एन्तोयीनेत थी जिसने मूल्य-वृद्धि के विरुद्ध महिला प्रदर्शनकारियों से कहा था: "यदि रोटियाँ नहीं हैं तो केक-बिस्कुट क्यों नहीं खाती हैं?"

जब कुआला लुम्पूर मे राष्ट्रपति अहमद ने एक प्रेस-कान्फ्रेंस में कहा कि वह

इमरजेंसी के विरुद्ध हैं तो 'समाचार' ने तो यह खबर दाब दी लेकिन 'राइटर' ने दुनिया भर में इसे फैला दिया। प्रधान-मंत्री को घोषित करना पड़ा कि राष्ट्रपति अस्वस्थ हैं और वह वापस बुला लिये गये। आकस्मिक तथा अतार्किक ढंग से राष्ट्रपति की मृत्यु के पूर्व क्या कनफूसी हुई यह अभी भी रहस्य है। लेकिन यह स्पष्ट हो गया कि देवी जी की खिचडी पक चुकी थी। बहरहाल कुछ भी करने के लिए बहुत देर हो चुकी थी। जैसा कि एक कार्टूनिस्ट ने खाका खींचा कि ज्योतिषी लोग भी खेमाबदलू हो गये थे।

नवम्बर १९७७ में इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण के बारे में 'समाचार' की टिप्पणी अखबारों में छपी। और बातों के अलावा यह कहा गया :

> नयी दिल्ली : "नवम्बर २० (समाचार)—'आर्गेनाइजर' के सम्पादक श्री के० आर० मलकानी अपनी पुस्तक 'द' मिडनाइट नॉक' में लिखते हैं—"जब राष्ट्रपति ने कुआला लुम्पूर की एक कान्फ्रेंस में कहा कि वह इमरजेंसी के विरुद्ध हैं तो 'समाचार' ने तो यह खबर दाब दी लेकिन 'राइटर' ने दुनिया भर में इसे फैला दिया।"
>
> "प्रधान मन्त्री (श्रीमती गाधी) को घोषित करना पड़ा कि राष्ट्रपति अस्वस्थ हैं और वह वापस बुला लिये गये। आकस्मिक तथा अतार्किक ढंग से राष्ट्रपति की मृत्यु के पूर्व क्या कनफूसी हुई यह अभी भी रहस्य है।"
>
> "राष्ट्रपति के साथ एक भारतीय संवाददाता कुआला लुम्पूर गया था, बता रहा था कि श्री अहमद ने वहाँ कोई प्रेस कान्फ्रेंस नहीं की।"
>
> "श्री अहमद की मृत्यु के थोड़ी ही देर बाद श्रीमती गांधी ने अस्वीकार किया कि इमरजेंसी को लेकर उनमें और स्वर्गीय राष्ट्रपति में कोई मतभेद था।"

मैंने जो कुछ ऊपर कहा उसे फिर दुहराता हूँ। राष्ट्रपति विदेशी संवाददाताओं से कुआला लुम्पूर में मिले थे और बताया था कि वह इमरजेंसी के विरुद्ध थे। विदेशी पत्रों में यह प्रकाशित भी हुआ। 'समाचार' के एक संवाददाता को जब बाद में यह मालूम हुआ तो उसने यह खबर भारत भेजी। दिल्ली में 'समाचार' ने इस खबर की नकल विदेश मन्त्रालय को अनुमोदन के लिए भेजी जो कि पास नहीं की गयी।

जहाँ तक श्रीमती जी की अस्वीकृति का प्रश्न है तो मैं उन्हें ही उद्धृत करना चाहूँगा कि "कोई मेरा विश्वास नहीं करता।"

यह अब कहा जा सकता है कि तुर्कमान-गेट के कांड से राष्ट्रपति दुःखी थे। जब उन्हें मुजफ्फरनगर, जहाँ कि मुसलमानों की भारी हत्या हुई थी, नहीं

जाने दिया गया था तब तो और भी दुःख हुआ था और संजय जो कुछ कहते फिर रहे थे तथा करते फिर रहे थे उससे तो राष्ट्रपति भी भयभीत थे।

यों ही कभी अपनी माँ के साथ के अलावा संजय से राष्ट्रपति कभी नहीं मिले। अब उन्होंने उसे पास से जानना चाहा। अपने एक पुत्र से संजय को खाने पर दावत देने के लिए कहा। संजय ने जिस प्रकार कहा कि बूढ़े लोग अपने पदों से चिपके रहते हैं, साथ ही राष्ट्रपति-पद की लिहाड़ी ली तथा और भी अनाप-शनाप बका तो राष्ट्रपति को अपनी आशकाएँ सही मालूम हुई। उन्होंने अपने कर्मचारियों को पिछली रात के खाने पर जो कुछ घटा उसे बताते हुए कहा, "मैं सारी रात सो न सका।"

मुझे पूरा शक है कि श्रीमती जी चुनावों को झाँसा दे जाने के चक्कर में थी, लेकिन राजनीतिक विरोधियो के विरुद्ध चुनावों को झाँसा एक डिक्टेटर तभी दे सकता है जब उसे विशाल जन-समर्थन प्राप्त हो। हिटलर और मुसोलिनी को यह प्राप्त था। इन श्रीमती जी को भी सन् १९७१ में यह समर्थन प्राप्त था लेकिन सन ७७ में परिस्थितियाँ आमूल बदल चुकी थी। दूसरे नागरिकों की तरह सरकारी कर्मचारी भी सरकार के विरुद्ध थे। झाँसा देने वालों ने भी मुँह चुरा लिया था। और तो और संजय के अपने सुरक्षा दल के लोग फालतू समय मे कांग्रेस पोस्टर फाड़ा करते थे।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो कुछ देवी जी ने किया, वह उससे भी खराब कर सकती थी। उदाहरण के लिए अधिकांश बन्दियो को न छोड़ा जाना और चुनावों का आदेश हो जाता। ऐसी स्थिति में वह विरोधियों को विभाजित भी कर ले जाती और गतिहीन भी। जिसका नतीजा होता कि उनके लिए चुनाव लड़ना भी मुश्किल होता और उसका बायकाट भी। लेकिन यह सम्भव है कि उन्होंने इस डर से छोड़ा कि यदि विरोधियो ने चुनाव का बायकाट कर दिया तो जिस वैधता के लिए वह चुनाव करवा रही हैं एक तो वही समाप्त हो जाती। दूसरे किसी अकल्पनीय दिशा से भयकर विस्फोट की संभावना का रास्ता बन जाता। यह भी संभव है कि उन्होंने बन्दियों को इसलिए छोड़ा कि उनकी 'इंटेलीजेंस' ने उन्हे बताया कि किसी भी हालत में विरोधी एक होने वाले नही हैं। लेकिन जो भी कारण रहे हों, सच तो यह है कि अधिकांश बन्दी छोडे गये, हालाँकि टप-टप करके। उस सीमा तक उन्होंने अपनी नैतिकता के रिवन का प्रदर्शन किया—जैसा कि रावण। रावण ने भी तो सीता को बन्दी कर रखा था लेकिन शीलहरण नही। और, यह तो बात हुई।

जो हो, जब यह सब घटित हुआ, हम जानते थे कि यह सब होगा फिर

भी हमें विश्वास नही था। क्या सी० आई० डी० की यह सूचना सही हो सकती थी कि बंसीलाल को ३० प्रतिशत मत प्राप्त होंगे—जबकि उसे २६ प्रतिशत मिले—और यह कि कांग्रेस २०० से अधिक नही बढ़ेगी ? ऐसा सत्य का घटित हो जाना क्या अच्छा नही ?

जब भुट्टो चुनाव जीत गये तो साथी बंदियों ने आशंका की : "क्या पाकिस्तान की इस बात का प्रभाव भारत पर नही पडेगा ?" मैंने आश्वासन दिया कि बिल्कुल नही। मैंने कहा कि, कुछ हो, पाकिस्तान से सर्वथा विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया करना भारत के लिए सहज है।

उन्होंने पूछा कि यदि इमरजेंसी हट जाए तो क्या वह जीत सकती है ? नहीं, बहुत देर हो चुकी। मैंने कहा कि एक समय था जब वह सही थी। अब यह जो भी करेंगी वह विरुद्ध ही जाएगा। प्रत्येक के जीवन में यदि ज्वार आता है तो भाटा भी निश्चित है।

यद्यपि हम जानते थे कि चुनाव में जनता के जीतने की भारी संभावना है, लेकिन श्री जगजीवन राम के त्यागपत्र के बाद ही अधिकांश लोग आश्वस्त हुए। एक जेल अफसर तो जनता पार्टी की जीत के बारे में इतना निश्चित था कि वह बोला ! "अब चाहे तो अपने जालिम को आप यहां भेज दें, हम उसे देख लेंगे।" जिस दिन चुनाव का दिन आया जीवन में पहली बार यह वरिष्ठ अधिकारी गया और मतदान किया। बन्दी लोग रोज रात में विरुद्ध उम्मीदवारों की संभावनाओं पर चर्चा करते। चूंकि वे खुद तथा उनके परिवार के आ... लोग राज्य के सभी भागों से आते थे, इसलिए उन्होंने पहले ही बता... कि हरियाणा की सारी सीटें जनता को मिलेंगी, और हुआ भी यही। ...टेक यही होती—'हुकूमत थारी होवेगी।'

रेडियो पर जब हम झूठ सुनते तो सोचते कि जनता के दिल-दिमाग ... इसका क्या असर पडेगा ? क्या इस सारे पाखण्ड के परे जनता देख ... उन्होंने देखा। जिस प्रकार कि एक स्वस्थ शरीर से ही छूत से लड़ने के ... कीटाणु जन्मते हैं उसी प्रकार सरकारी समाचारों से लड़ने के लिए उन्होंने ... प्रति-प्रचार का ढंग निकाला। देवी जी के सरकारी रेडियो और ...रक... समाचार का जवाब था 'अफवाह', जो कि सही प्रकार था जन-प्रचार का और सरकारी समाचारों से कहीं अधिक सचाई इन अफवाहों मे होती थी।

मैडम की आन्तरिक घबराहट उस समय व्यक्त हो गयी जब उन्होंने ... उन्हें 'छुरा मारने के लिए' ही विरोधी एक हो गये हैं। सच तो यह है कि ... ही थी जिन्होंने १९६९ मे कांग्रेस को छुरा भोंका था और विभाजित किया

सम्मिलित विरोधियों ने उन्हें सिर्फ वोटों के समुद्र में ले जाकर 'प्रवाहित' कर दिया था।

जब मैडम ने बाजी उलटती देखी तो उन्होंने मतदाताओं से कहा, 'क्षमा करो और भूल जाओ'। भगवान् ही भूल सके तो भूल सके, मनुष्य तो उन्हे और उनके कारनामों को भूलने से रहा। शायद ज्यादा ईमानदारी का रास्ता यही होगा कि दया आधारित न्याय किया जाए। अपराध, दण्डित किया जाना चाहिए पर आवश्यक नही क्रूर दण्ड दिया जाए।

२६ जून १९७५ को जिस प्रकार मेरे बच्चे देवी जी को मारने के लिए डण्डा उठाये रहे, वापस गोदाम मे डण्डे रख देने के बाद भी उनकी ज्यादतियों को क्षमा न कर सके। आज भी वे, न उनका और न उनके साहबजादे का, किसी का नाम नही लेते। मजाक मे मसखरेपन के साथ विक्रम उन्हें 'भारत की भूतिनी' पुकारता है। लगता है कि जैसे उनके नाम लेने से ही बच्चों में भय की लहर दौड़ जाती है। प्रत्येक शाम जब मैं घर पहुँचता हूँ तो बच्चे पत्रिकाएँ-पुस्तकें तथा टिफिन-बाक्स लेने बाहर आ जाते हैं। एक दिन सिन्धु को मैंने एक पत्रिका दी, जिसे उसने ले जाने से इंकार कर दिया। मुझे आश्चर्य हुआ पर इसका कारण समझने में मुझे थोड़ी देर लगी, क्योंकि मुखपृष्ठ पर देवी जी का चित्र छपा था। सिन्धु बोली, "मैं इसे छुऊँगी नही।"

गत वर्ष विक्रम के शिक्षक ने पूरी क्लास से 'आई० जी०' पर एक निबन्ध लिखने के लिए कहा विक्रम इसके लिए तैयार नही हुआ। जब बाध्य किया गया तो यह गुलगुला लड़का बोला 'सब ठीक है, मैं इसके विरुद्ध लिखूंगा।" शिक्षक नरम अवश्य पडा, परन्तु 'गृहकार्य नहीं किया' के लिए दण्ड रूप में 'सफेद कार्ड' जारी कर दिया।

एक दिन पड़ोस की एक महिला ने मजाक करते हुए विक्रम से कहा, "देखो जनसंघ कितना खराब है, तुम्हारे पिता को जेल जाना पड़ा, तुम तो कांग्रेस में शामिल हो जाओ।" विक्रम आया और माँ से गोपनीय ढंग से बोला, "ममी, ये शोला आंटी कोई भली महिला नही हैं। तुम इनसे मत बातें किया करो।"

इन देवी जी को यह नही पता कि लाखों बच्चों पर वह किस प्रकार मनोवैज्ञानिक चोट पहुँचा रही हैं। इन घावों पर मरहम के लिए न्यूनतम वह यही कर सकती हैं कि बन्दियों के परिवारों से बिना ननुनच के सार्वजनिक क्षमा प्रार्थना करें और सार्वजनिक जीवन से अन्तर्ध्यान हो जाएँ। इसके लिए कोई उत्कंठित नही है कि तिहाड जेल मे उन्हें 'ग्वालियर कक्ष' या 'जयपुर-कक्ष' में से कोई एक दिया जाए।

जब मैं जेल में चक्कर काटा करता था तब मेरे ओठों पर यह गीत बारम्बार आया करता—"मौला जाने क्या होगा, अल्ला जाने क्या होगा आगे।" मैं स्वीकारता हूँ कि चुनाव के दिन पास आने के साथ ही रात में सोना मेरे लिए कठिन होता जा रहा था। कुछ कांग्रेसी प्रत्याशी धमकियाँ देते कि ज्यों ही चुनाव समाप्त हुए नहीं कि सारे विरोधी नेता फिर धर लिये जाएँगे। सुनने में क्रूर लगता। मार्च में कुछ रातों में तीन बजे तक जागता रहा। यदि हार गये तो क्या करेंगे? इसका मतलब अन्तहीन कारावास।

जनवरी १८ से २० मार्च के प्रत्यूष युग मे बाहरी मित्रों से आये पत्रों से संजीवनी मिलती थी। उनमें से एक अशोक मेहता का था, जिसमे उन्होंने लिखते हुए लिखा, "इस मौके पर प्रचार के लिए तुम नही हो यह सोचकर परेशानी होती है। लेकिन बहुत देर नही है। तुम और दूसरे सब जल्द ही हमारे बीच होओगे। देश, प्राचीन को विनष्ट करके नये के अभिनन्दन के लिए संकलित है। वातावरण बहुत ही उत्साहवर्धक है।"

मैंने वे गाने नोट कर रखे थे जिन्हें जनता के जीतने के दिन आकाशवाणी से सुनना चाहता था। जिसमें मुकेश का 'झूम-झूम के नाचो आज, नाचो आज, गाओ खुशी के गीत।' और पंकज का, 'तेरी दया से आयी है, आज मुराद मिल गयी।' यह गीत था। मैं यह सूची अपनी पत्नी को देना चाहता था, ताकि संबन्धित व्यक्तियों तक पहुँच जाए। लेकिन फिर सोचा कि, ठीक नही। सफलता पर प्रसन्न होने की आवश्यकता नही तथा असफलता पर दुःखी। संघ के एक 'स्वयसेवक' को इन दोनों बातों को चलने का क्रम ही मानना चाहिए। और संघ के 'स्वयंसेवक' के जीवन का सबसे उच्च ध्येय और कुछ नही हो सकता सिवाय इसके कि वह एक अच्छा स्वयंसेवक बने।

प्रतिक्षित दिन और रात आखिरकार आये। रात के भोजन के समय तक एकदम स्पष्ट हो गया था कि जनता पार्टी जीत रही है। पूरे जेल में उत्कंठा फैली हुई थी। रात एक बजे के बाद 'चक्की' में सो सका था सिर्फ एक साथी के द्वारा जगाये जाने के लिए जो कि हाल से ही चिल्लाता आ रहा, "माई हार गयी, माई हार गयी।" जैसे हो हाल में पहुँचा तो हम चारों 'अपने कानों से' इस समाचार को सुनना चाहते थे। जब किसी दूसरी भाषा में खबर सुन ली तब उस बे वक्त मे रसोइये को जगाया गया कि चाय के द्वारा इस अर्धरात्रि के समारोह को मनाया जा सके। प्रोफेसर प्रेम सागर बोले, "मैं इतना खुश हूँ कि नही जानता कि इस खुशी को कैसे अभिव्यक्त करूँ.?" हम चार बजे तक जागते

रहे कि अगर कहीं रेडियो सुनने में जरा भी चूक हो जाए तो उस समय फिर सुना जा सके।

जब आश्वस्त हो लिए तो चार बजे सोने गये ताकि पाँच बजे के शोर से फिर जग उठें—"इमरजेंसी उठ गयी।" इमरजेंसी उठ गयी।" इस पर मैंने फिकरा कसा, "अच्छा तो फिर हम भी उठ गये।" और बिस्तर छोड़ना ही पड़ा।

उस दिन एक और 'बेड टी' मिली। तत्काल ही बधाई देने के लिए जेल अधिकारी उपस्थित हो गये। हमें लग गया कि दिन शुरू होने के पहले ही बाहर हो जाएँगे। हुए भी ४·२० पर सवेरे। दीर्घ काल-रात्रि बीत चुकी थी। लगता था कि यह अजीब ४२० वाला गोरख-धंधा है। लेकिन चलो आखिरकार सब खत्म हुआ। २१ मार्च का प्रातःकाल सहसा सुगन्धित हो उठा और लगा कि जहाँ तक याद पड़ता है उन सबसे अधिक आज का यह सुहावना दिन वासन्तिक है। फ्रांसीसी क्रान्ति के सम्बन्ध में वर्डसवर्थ की पंक्तियाँ सहसा याद हो आयीं।

परमानन्द था उस सूर्योदय की वेला में जीवित रहना परन्तु युवा होना स्वयं स्वर्ग ही था।

और जेल-अधिकारियों ने प्रसन्नता से हमारे साथ मिठाइयों पर हाथ साफ किये।

सब की आँखों में आँसू थे, निश्चय ही अश्रु प्रसन्नता के थे, लेकिन इस देवी के भाग्य पर दुःख के आँसू भी थे। मुझे उसके लिए खेद था। खेद इस बात का कि एक सम्भावनापूर्ण व्यक्ति का ऐसा गरिमाहीन अन्त हुआ। अपने इतिहास में एक काले पृष्ठ के जुड़े जाने पर भी खेद था। मुआवजा यही मिल रहा था कि उसी इतिहास में जनता का एक स्वर्णपृष्ठ भी जुड़ा जा रहा था। चारों ओर शांति थी—ऐसी शांति जो शब्दों से भी अधिक मुखरित होती है। अपने पैतृक गौरव के अनुरूप ही भारत सिद्ध हुआ। भारत, जो कि एक दूसरा युगांडा तथा ईदी अमीन टाइप की सरकार के जैसा बना दिया गया था, सहसा संसार भर की आँखों का आकर्षण बिन्दु बन गया। भारत अब विश्वास के साथ अपने भविष्य की कल्पना कर सकता है, जो कि विगत से भी अधिक महनीय होगा। हम वहाँ से गुजरे जहाँ पहले कभी नहीं पहुँचे थे और अच्छे रूप में बच निकले। यह भारत, एशिया और संसार भर के लिए महान् दिन था।

सबने यही सोचा कि नसबंदी और जगजीवन बाबू कांग्रेस को ले डूबे। इसमें सचाई अवश्य है, पर इतनी नहीं। मेरा यह विचार रहा है कि यदि एक भी नसबंदी का मामला हुआ होता तो कांग्रेस को हराया जा सकता था। बेशक

यह एक पेचीदा सवाल है। लेकिन इसमें भी मुझे शक नहीं था कि यह नहीं भी होता तो भी दूसरे मामले जैसे मकानों का गिराना, भूमि कर में मनमानी वृद्धि, जल-कर, अविवेकपूर्ण गिरफ्तारियाँ आदि बातें उभरती और कांग्रेस मुसीबत मे पड़ती। और क्या, इतनी ज्यादा समस्याएँ जमा थी कि उन्हें लेकर कितनी ही बार काग्रेस को पीटा जा सकता था। यह तो उस अमरीकी एटम शस्त्रागार की भाँति था जो कि संसार को हजारों बार विनष्ट कर सकता था।

मैंने भी यही सोचा कि यदि जगजीवन बाबू ने पलटा न भी खाया होता तो जनता जीतती। उनका इधर आना—'डेढ आदमियों की सरकार' की तानाशाही के विरुद्ध ईमानदार विरोध तो था ही, साथ उसमे जनता के बहुमत मे आने की संभावना भी बढ़ी। लेकिन, सरकार के भीतर होने के कारण वे जान चुके थे कि जनता विजयी होने जा रही है, और इस सूचना ने उनके निर्णय को निश्चित ही प्रभावित किया होगा।

यह याद रखना चाहिए कि इमरजेंसी तो शुरू से अलोकप्रिय थी और नसबंदी का कार्यक्रम दस महीने बाद क्रियान्वित हुआ और यह भी कि पंजाब, बंगाल महाराष्ट्र और उड़ीसा जैसे राज्यों मे जहाँ कि थोड़ी नसबंदी हुई या बिलकुल ही नही फिर भी कांग्रेस धुल गयी।

फिर भी यह प्रश्न रह ही जाता है कि नसबन्दी जैसे विस्फोटक कार्यक्रम के द्वारा जनरोष पैदा करने के बाद कांग्रेस ने क्यों चुनाव करवाए? मेरा ख्याल है कि सामान्य रूप से अधिनायकवाद की प्रकृति में और खासतौर भारतीय अधिनायकवाद की प्रकृति में इसका उत्तर निहित है। कुछ समय के बाद प्रत्येक अधिनायकशाही बहरी और अन्धी हो जाती है। अतिरिक्त यह कि भारतीय अधिनायकशाही पिछड़े ढंग की अधिनायकशाही थी। यह कहा गया है कि चूँकि भारत, पिछड़ा देश है, इसलिए भारतीय समाजवाद भी पिछड़ा हुआ ही होगा जैसा भारतीय पूँजीवाद पिछड़ा हुआ है। इसी तर्क पर भारतीय अधिनायकशाही भी पिछड़े ढंग की अधिनायकशाही सिद्ध हुई। प्रायः हुआ कि दाहिने हाथ को नही मालूम कि बाँया क्या कर रहा है? जबकि माँ चुनावों के लिए प्रतिश्रुत थी, बेटा नही। बेटे ने नसबदी का आग्रह किया, फलस्वरूप लाखों विरुद्ध हो गये, बिना यह सोचे कि कांग्रेस को इसका क्या चुनाव-मूल्य चुकाना पड़ेगा।

इससे भी बड़ा सवाल तो यह कि सरकार ने नसबंदी का कार्यक्रम इतने व्यापक पैमाने पर क्यों शुरू किया? मेरी तो धारणा है कि यह अमरीकी उदाहरण देखकर ही आरम्भ किया गया था। माँ सदा ही रूस-भक्त रही है। बेटा अमरीकी भक्त बना—इस कोशिश मे कि भारतीय अधिनायकशाही को दो 'सुपर-

शक्तियों' का बल मिल सकेगा। वाल-स्ट्रीट के नेतृत्व वाले अमरीकी पत्र संजय नामक इस 'सुन्दर, युवा बहादुर' के पीछे थे।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद के पश्चिमी गौर-संसार के नेता के रूप में अमरीका सदा सभी वर्ण के लोगों को, भले ही वे काले, भूरे या पीत हों, शक की नजर से ही देखता रहा है। उन्हें सदा भय रहा है कि इन वर्ण-वर्ण के लोगों की बढ़ती आबादी धीरे-धीरे विश्व के गौर-आधिपत्य को एक दिन समाप्त कर देगी। इसलिए वे हमेशा इन वर्ण-वर्ण के लोगों की जनसख्या वृद्धि को रोकने की सोचते रहे हैं। और तो और भारत अमरीकी सम्बन्ध जब सबसे खराब थे और अन्य सारी सहायताएँ बन्द कर दी गयी थी तब भी 'परिवार-नियोजन' के लिए आवश्यक धनराशि दी जा रही थी।

काग्रेसियों ने अधिनायकशाही रूस से ली और नसबंदी अमरीका से, ताकि रूसी अमरीकी इन दोनों स्टूलो के बीच ही गिरा जा सके।

भगवान् की चक्की मे पिसता धीमे है पर बारीक ही पिसता है। क्रिया और प्रतिक्रिया को समान तथा विरुद्ध होना चाहिए। कर्म के सिद्धान्त ने देवी जी को जकड़ ही लिया।

जून १९७५ मे देवी जी के सामने विकल्प था कि वह बनी रहें और तीव्र विरोध का सामना करें या फिर गरिमापूर्ण ढग से अलग हट जाएँ। देवी जी ने न जाने का ही नही निर्णय लिया बल्कि विरोध मात्र का दम घोट देने की भी सोची। इन दोनों ही बातों के पूर्ण लाभ के चक्कर मे दोनों से ही पूर्ण पतन मिला। उन्हे न केवल जाना ही पड़ा पर 'बहुत बेआबरू होकर तेरी महफिल से हम निकले।' जैसा कि मुहावरा है—इधर खन्दक उधर खाई, आखिरकार वह क्या चुनती? और अब ये दोनों ही उन्हे प्राप्त हुए। सयोग से ज्योतिषी को उस दिन अन्तिम हँसी आयी। ३ फरवरी बम्बई के 'टाइम्स ऑफ इडिया' ने छापा कि मैं और कुछ लोग छूट गये। मेरे एक बडे भाई की, जो कि शौकिया ज्योतिषी हैं, गणना के अनुसार मुझे तो दो माह बाद छूटना चाहिए। जैसा कि हुआ, कि 'टाइम्स' की सूचना गलत थी और मैं सात सप्ताह बाद छूटा—२१ मार्च को।

* * *

१२

• संघ के चरणों में

जब सरकार ने इमरजेन्सी लागू करदी, तीस हजार के करीब लोग जेलों में ठूंस दिये तो उनमें अधिकांश बन्दी या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के थे या संघ की पृष्ठभूमि के भारतीय जनसंघ के लोग थे। बाद में नवम्बर-दिसम्बर ७५ में जब सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो उन सत्याग्रहियों में बहुत बड़ी संख्या उनकी थी जो संघ और जनसंघ के थे। संघ के इस जोर का क्या रहस्य है ? राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघ में ऐसा क्या है जो अपने अनुयायी को देश के लिए प्राणार्पण के लिए वह तैयार कर देता है ? शायद मेरे अपने उदाहरण से स्पष्ट कर सकूं कि संघ किसी व्यक्ति के लिए क्या करता है तथा संघ, राष्ट्र के लिए क्या करता है, तथा कैसे।

आरम्भ, मुझे अभी भी याद है।

वह सन् ४० की गर्मियाँ थी। युद्ध ने सबको मँथ रखा था। सहसा सभी प्रकार की घटनाएँ घट रही थीं। मेरे अपने शहर, हैदराबाद (सिंध) में पश्चिम एशिया के युद्ध के नगाड़ों की आवाज बम्बई या मद्रास से कही अधिक जोर से सुनी जा सकती थी। वातावरण में एक प्रकार की अनिश्चितता की भावना तथा अराजकता का माहौल था। गाँवों से भाग-भागकर हिन्दू अपेक्षाकृत कस्बों-शहरों में आने लगे थे। डर यही था कि अराजकता की यह लहर कहीं शहरों को भी न छूले।

इस मनःस्थिति में एक दिन यह मालूम हुआ कि कोई एक 'संघ' है जो 'लाठी' चलाने की शिक्षा देता है। उत्साही युवकों को लगा कि जो हालत होती जा रही है उसमें यह प्रशिक्षण लाभकारी हो सकता है। एक शाम, खाने के बाद, मैं वहाँ पहुँचा और भर्ती हो गया। तब मैं अठारह का था।

मुझे मालूम हुआ कि देख-रेख करने वाला मित्र तो मेरा स्कूल सखा है।

लेकिन अधिकांश प्रशिक्षार्थी छोटे लड़के थे। सबसे अन्त में एक संस्कृत-प्रार्थना होती थी, जिसे हममें से कई बोल ही नहीं पाते थे। स्कूल के बाद हम लोग झुण्ड बनाकर खड़े दुनिया-जहान की बातें करते रहे। अभी सब निर्माणाधीन मामला था। मैं वहाँ कुछ दिन तो गया लेकिन फिर बन्द कर दिया। 'शाखा' का अभी आकर्षण नहीं विकसित हुआ था और फिर मैं 'लाठी-भाँजू' टाइप का भी नहीं था। बंकिम के 'लाठी-उद्‌बोधन' को टूटे-फूटे रूप में अंगीकार करने में भी बरसों लग गये :

अये लाठी, तोमार दीन गियेछि
किन्तु शिक्षित दस्ते पड़िये
तुमि ना पारो एमोन के नाय ?

इस उद्‌बोधन-गान की आज के एटम-युग में प्रासंगिकता समझने में भी बरसों लग गये।

सन् १९४१ में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य श्री जयराम दास, दौलतराम ने मुझे बुलाया और गर्मियों की छुट्टियाँ गांधीजी के सेवाग्राम में बिताने के लिए कहा लेकिन इस प्रस्ताव के बारे में मैंने कोई रुचि नहीं दिखायी। मैं गांधीवादी 'बेवलैग्थ' पर नहीं पड़ता था। सियालकोट के श्री राजपाल पुरी का, जिन्होंने कि दिल्ली में सरकारी नौकरी छोड़कर सिंध में संघ का कार्यभार सम्हाला था, परिचय मेरे बड़े भाई प्रो० एन० आर० मलकानी, जो कि चम्पारन के दिनों से ही गांधी जी के भक्त थे, से था। चम्पारन आते-जाते मुजफ्फरपुर से गुजरते हुए वह भाई साहब के साथ ही रुकते थे। क्योंकि उनका परिचय आचार्य कृपलानी ने करवा दिया था।

सन ४१ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में एक दिन शाम की हवाखोरी के बाद मैं और भाई साहब लौट रहे थे तो दादा ने शाखा चलने के लिए कहा। और हम गये।

यह नव-विद्यालय का मैदान था, जहाँ आज सिंध विश्वविद्यालय स्थापित है। और जो मैंने देखा उससे चकित रह गया। दमकते चेहरे वाले नवयुवक थे जो लाठी चला रहे थे, भारतीय खेल खेल रहे थे, देश-भक्ति के गीत गा रहे थे तथा अनुशासन बद्ध, होते हुए भी मुसकान फूटी पड़ रही थी। सारा वातावरण बड़ा ही उदात्त और पवित्र था।

अगले दिन वे सब तीन दिन के शीतकालीन-शिविर के लिए जा रहे थे और मुझे चलने के लिए आमंत्रित किया था। जाने का लोभ तो था लेकिन मैं इतना

कम अवधि की सूचना पर जाड़ों की तीन रातें देहात में काटने का साहस नहीं जुटा पाया। लेकिन फिर भी मैं बराबर उत्कंठित रहा कि तीन दिन पूरे हों और वे लौटें और तब मैं भी शाखा जाऊँ। वह शाम मेरे जीवन में परिवर्तन की सन्ध्या थी।

कुछ दिनों बाद २६ जनवरी थी, मैं थोडा कांग्रेसी भी था, क्योंकि सन ३०-३२ के लाठी-चार्ज का मजा चख चुका था तथा कभी-कभार प्रभात फेरियों में शामिल हुआ था। मैंने सोचा कि होम्सटेड-हाल, जहां आज रेडियो पाकिस्तान का हैदराबाद केन्द्र है, चलना चाहिए जहां कि स्वाधीनता की शपथ पढी जाने वाली थी। इसलिए 'शाखा' जाने में थोड़ी देर हो गयी। जब शाखा चलाने-वाले मित्र ने पूछा कि मुझे देर क्यों हुई और जब मैंने कारण बताया तो वह केवल मुसकराया लेकिन मेरे मन में जरा भी शक नही रहा कि शाखा में जाना दूसरी सारी बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

कुछ दिनों बाद मैंने यह बात अपने भाई को सुनायी और कहा कि लगता कि संघ, कांग्रेस की विरोधी है। थोड़ी देर के बाद वह बोले, "लेकिन संघ, लोगों को देश के लिए जीना और मरना तो सिखाता है। युवको को प्रभावित करने में कांग्रेस असफल रही है। मैं चाहूँगा कि तुम शाखा जाते रहो।" और मैं जाता रहा। आज मुझे कांग्रेस से अधिक महत्त्वपूर्ण संघ लगता है।

एक सवेरे तीन मील की बिना रुके दौड़ के स्थानीय आयोजन मे मैं सम्मि-लित हो गया। हममे से अधिकाश इतनी लम्बी दौड के आदी नही थे लेकिन हममें से कोई नही रुका, क्योंकि 'दूसरा कोई' नही रुक रहा था। घर पहुँचते तक मै मुश्किल से ही चल पा रहा था। शाम को मैं शाखा के लिए—जो कि दस मिनट के फासले पर थी—एक घंटे पूर्व ही चला। परन्तु मैं इतने धीमे चल पा रहा था कि विलम्ब से पहुँचा। उस शाम खेलों मे भाग लेने का सवाल ही नही था। फिर भी विलम्ब होने का दुःख बना रहा।

एक वर्ष बाद जब मैंने अपने शाखा के प्रथम दिन के बारे मे सोचा तो पाया कि मैं अब बदला हुआ व्यक्ति था। मैंने देश-सेवा के बारे में सदा एक अस्पष्ट आकर्षण अनुभव किया है। मैं तो सिंध प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष तक के रूप मे अपनी कल्पना करता रहा हूँ। इस दिशा में बढने के ख्याल से इंजीनियर बनने के लिए विज्ञान पढने के पारिवारिक दबाव की भी उपेक्षा की और मैंने इसके बजाय अर्थशास्त्र और राजनीति विषय लिये। मैं अपने लिए मार्ग चुनने के मामले में अब वयस्क युवक था। उस युवावस्था में मैं प्रेम मे पडा-और उठा भी—और वह प्रेम, संघ से था। संघ में रहते प्रत्येक दिन गंगा-स्नान से पवित्र

होने का भाव रहता। मेरी मानसिक स्थिति उस नये शिष्य, भक्त की-सी थी, जिसकी प्रार्थना थी—संघं शरणं गच्छामि !

मैंने इस बात पर खूब सोचा है कि संघ में ऐसा क्या है जिसके कारण चालीस के आस-पास लाखों मेधावी नवयुवक इसमें आये और उसके बाद संघ उन्हें अपने से बाँधे रहा। मेरा ख्याल है यह आकर्षण, सम्पूर्णता का था। कांग्रेस अपनी अहिंसा की वर्जना और चरखे के चिह्न के साथ स्वतंत्रता की ओर ले जाती नहीं लग रही थी। सिर्फ एक विशाल सैनिक अभियान ही हठीले अंग्रेजों से भारतीय स्वधीनता छीन सकती है और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही इस स्थिति के ध्येय का उत्तर दे सकता था।

साथ ही मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बारे में कांग्रेस की द्वैत मनोवृत्ति को संघ ही शह और मात दे सकता था। समय की चुनौती का वह अत्यन्त सम्मोहक जवाब था। अटक से कटक और कराची से कन्याकुमारी तक, संघ राष्ट्रीय-आक्रोश बन चुका था।

न ही संघ की अपील सामाजिक समस्याओं के बारे में ही थी। अपील, यदि कुछ थी तो, एक व्यक्ति के लिए सर्वाधिक थी कि वह क्या है और क्या उसका काम्य है। वातावरण की पवित्रता और समग्रता इस बात के लिए सदा तैयार रहते कि स्व-उत्थान अपनी ही शक्ति के अनुसार किया जाए। अतः कुछ अपने स्वास्थ्य के लिए आसन करते। कुछ ने मांस खाना बन्द किया। कुछ ने धूम्रपान छोड़ा और कुछ ने फिल्म देखना। बेशक इनमें से किसी बात के लिए किसी ने भी किसी से कुछ नहीं कहा होगा। लेकिन यह सब स्वेच्छा से स्व-उत्थान के लिए उस पवित्र वातावरण में होता था। बाद में तो सभी को कुछ भिन्न लगा; पहले से अच्छा।

साप्ताहिक 'बौद्धिक' में स्वयंसेवकों को इतिहास, संस्कृति साहित्य और धर्म से अवगत कराया जाता। संघ का अपना स्पष्ट, अपरिवर्तनशील दर्शन है जो आपके मन-मस्तिष्क को आलोकित करता है तथा जो बातें आपको स्पष्ट नहीं होतीं उनकी व्याख्या करता है। स्वयंसेवक के पास सभी तरह के प्रश्नों के उत्तर होते हैं। उसे एक प्रकार की प्रामाणिकता मिली हुई होती है। यह आपकी आत्मा का भोजन जैसा होता है। गीता का वचन है—संशयात्मा विनश्यति—सशयी व्यक्ति विनष्ट हो जाता है। संघ में किसी प्रकार के संशय के सिद्धान्त नहीं हैं।

इन राष्ट्रीय और वैयक्तिक पक्षों के अलावा संघ का सामाजिक प्रभाव भी है। साधारणतः एक नवयुक अपने कौटुम्बिकों को, स्कूल साथियों को या पड़ोसियों को ही जानता होता है। संघ में आप अपने से बड़ों-छोटों, मीलों दूर

रहने वाले समवयस्कों तथा अन्य और पेशे से बहुत भिन्न तथा दूर के लोगों से मिलते हैं। रातों-रात आपको लगा कि अपने शहर के हर गली-कूचे में आपका एक सहृदय रहता है। इसी प्रकार भारत भर में। व्यक्ति और समाज पर इस सबका बड़ा ही समग्रतावाला तथा उदात्त बनानेवाला प्रभाव होता है।

सन् ३७ में पहली बार शक्ति में आने तक कांग्रेस की संघ से कोई लड़ाई नहीं थी। और वास्तविक लड़ाई तो सन् ४६ से आरम्भ हुई जब उसे लगा कि उसे तो लोगों के वोट प्राप्त हैं परन्तु उनके दिल तो संघ के साथ हैं। और तब अपनी स्थिति के लिए चुनौती के रूप में संघ को देखना शुरू किया। और अब संघ को शासक-दल के द्वारा 'साम्प्रदायिक' 'फासिस्ट' प्रतिक्रियावादी और भी बहुत कुछ नाम दिये जाने लगे।

यह ठीक है कि संघ में मुसलमान सम्मिलित नहीं किये जाते, लेकिन इसका सम्बन्ध किसी अन्य बातों की अपेक्षा तो सन् २१ की मुस्लिम राजनीति है। वास्तव में पाकिस्तान आन्दोलन के उठ खड़े होने के बाद खुद कांग्रेस एक हिन्दू संस्था बन चुकी थी जिसमें, जिन्ना के शब्दों में थोडे से 'दिखावटी मुस्लिम चेहरे' थे।

संघ में सारा ध्यान राष्ट्रीय फूट पर रहा है तथा राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र-शक्ति पर आग्रह। इसलिए संघ, जयचन्द में अधिक दोष पाता है बनिस्बत मुहम्मद गोरी के। साथ ही वह एक मुस्लिम आक्रान्ता महमूद गजनवी और यूनानी आक्रान्ता सिकन्दर में भी कोई भेद नहीं करता। संघ मुस्लिम-विरोधी नहीं है, वह तो आक्रान्ता-विरोधी है बल्कि वह देशद्रोही-विरोधी है। मुस्लिम-आक्रान्ताओं के साथ मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने अपने को जो जोड़ लिया है उसके कारण भारत मे हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में तनाव है।

कांग्रेस अधिकृत जन-प्रचार के माध्यमों ने हमेशा प्रचारित किया है कि मुसलमानों के विरुद्ध संघ, हिंसात्मक कार्यवाहियाँ करता है। सन् १९४७-४८ में बहुत से मामले, जिनमें उ० प्र० के मुजफ्फरनगर का कंढला-काण्ड भी, संघ के कार्यकर्ताओं के विरुद्ध दायर किये गये। सबके सब ससम्मान बरी कर दिये गये। सन् १९६५ के युद्ध में दिल्ली मे पुलिस के अनेक कार्य संघ को सौंपे गये और एक मुसलमान का भी बाल बांका न हुआ। पढे-लिखे मुसलमान इस वास्तविकता को अब समझने लगे हैं। वे बताते हैं कि मुस्लिम समस्या के मामले में वैसे तो कांग्रेस और संघ मे कोई अन्तर नहीं है, सिवाय इसके कि "संघ ज्यादा ईमानदार है।"

जहाँ तक 'प्रतिक्रियावादी' होने का सवाल है, तो मैं समझता हूँ कि हम

नव स्थितियों के बारे मे प्रतिक्रिया करते ही हैं। क्रिया और प्रतिक्रिया का ठेका किसी की बपौती नही है। एक दौड़ती कार में दो-दो ही होते हैं—एक एक्सीलेटर और दूसरा ब्रेक—बेशक दो ब्रेक। यही हाल जीवित मशीन का भी है।

दूसरा लांछन यह कि संघ, ब्राह्मण-प्रधान संगठन है। कोई भी आधुनिक समझवाला व्यक्ति एक संगठन को उसकी रीति-नीतियों से समझना चाहेगा न कि उसके नेताओं की जातीय स्थिति से। संघ किसी दूसरी संस्था से ज्यादा ब्राह्मणवादी नहीं है। सचाई यह है कि भारत में कम्युनिस्ट पार्टी भी डांगे, पी० सी० जोशी, रणदिवे, नाम्बूदिरीपाद आदि ब्राह्मणों के हाथों में रही लेकिन इससे वह ब्राह्मण पार्टी तो नही बन जाती। और यह कि १ मई १९७७ तक समाजवादी पार्टी पर मधुलिमये, मधु दण्डवते, एम० एम० जोशी और एम० जी० गोरे का वर्चस्व रहा, तो इससे वह ब्राह्मण पार्टी तो नही बन जाती।

मुझे आश्चर्य न होगा कि लोगों का एक वर्ग अधिकृत प्रचार का शिकार हुआ है। प्रायः कांग्रेस-नीति इस बारे मे सुनायी पड़ जाती है, परन्तु ये ही लोग संकटकाल में संघ को रक्षक मान कर निर्भर भी रहते हैं। सन् १९६५ के युद्ध मे संघ के कार्यों के बारे में एक जनरल की उक्ति थी; "पंजाब भारत की खड्ग-भुजा है और संघ, पंजाब की खड्ग-भुजा।"

यह तर्क किया जा सकता है कि संघ ने स्वाधीनता-आन्दोलन में हिस्सा नही लिया और वह भारत-विभाजन को नही रोक सका। मुझे गीता का वह श्लोक याद आ गया :

> कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः
> स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।

जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखता है वही मनुष्यों मे बुद्धिमान है, योगी है, समस्त कर्मों का सम्पादनकर्ता है। चीजें वैसी ही नहीं होती हैं जैसी कि वे दिखलायी देती हैं।

डा० हेड्गेवार, संघ के संस्थापक-अध्यक्ष, सन् २१ के आन्दोलन मे सक्रिय थे। बाद में वह नागपुर पी० सी० सी० के महामंत्री थे। सन् ३० में जब संघ के कुछ स्वयंसेवकों ने नमक-सत्याग्रह में भाग लेना चाहा तो वह अपने सह-कार्यकर्ताओं के साथ गये और गिरफ्तार हुए, परन्तु बाकी के कार्यकर्ताओं से कहा कि संघ-कार्य यथावत चलता रहना चाहिए। सन् ४२ में संघ ने आन्दोलन का न विरोध किया न उसमे योग दिया। परिस्थिति के बारे में अन्य विश्लेषणों को जाने दें, सन् '४२ में संघ मे कोई विशेष शक्ति नहीं थी कि '४२ के आन्दोलन,

जो कि कुछ सप्ताह बाद समाप्त हो गया, पर कोई निर्णयात्मक प्रभाव डालता। दूसरी ओर नेहरू और आजाद अकेले में तथा राजाजी और मुंशी सार्वजनिक रूप से आन्दोलन की भर्त्सना करते थे, लेकिन कोई भी उन्हे कुछ नही कहता।

विगत को देखने पर स्पष्ट दिखलायी देता है कि सन् '४२ का आन्दोलन स्वराज्य-प्राप्ति की आशा से नही किया गया था, बल्कि कांग्रेस के उग्रवादियों—फार्वर्ड-ब्लाक और समाजवादी—का मुँह बन्द करने के लिए किया गया था। यदि कांग्रेस ने कुछ अधिक समझदारपूर्ण नीति युद्ध के वर्षो मे अपनायी होती तो अंग्रेज लीग को गोदी में न जाते, जिसके कारण भारत का विभाजन हुआ।

सन् '४३ में यह व्यापक भावना बनी कि स्वतन्त्रता अभी दशकों दूर है—'भारत-छोडो' आन्दोलन की 'सफलता' के लिए इतना ही बहुत है। बेशक बिहार-आन्दोलन के सन्दर्भ में बी० बी० सी० का कथन था कि कांग्रेस की तरह यदि अंग्रेज भी इसी अनैतिकता से शासन करते तो वे सदियों तक शासन कर सकते थे। ये तो आई० एन० ए०, नौ सेना-विद्रोह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक थे—जो कि कट्टर अंग्रेज विरोधी शक्तियां थी, जिन्होंने अंग्रेजों को बाध्य किया कि जिनके यहाँ '४५ मे पहले ही मजदूर सरकार आ चुकी थी, वे भारत को भले ही अंग्रेज नुमा नेहरू को सौंपे, पर चले जाएँ।

जब तक युद्ध चल रहा था तब तक सफल आन्दोलन चलाना सम्भव नही था और अंग्रेज इतने चुस्त थे कि युद्ध समाप्त होते ही स्वतंत्रता का वचन दे दिया। अतः यह समझने की बात है कि सन् '४५ के पूर्व सफल आन्दोलन सम्भव नही था और '४५ के बाद वह अप्रासंगिक हो गया। और तो और स्वयं गाधी जी, दूसरा आन्दोलन आरम्भ कर सकने के मौके के हाथ से निकल जाने का उन्हें दुःख बना रहा क्योंकि यह उनकी दिली इच्छा थी।

मेरा कयास है कि अंग्रेज नेहरू जी को प्रधान-मंत्री बनाना पहले ही तय कर चुके थे। अतः सुभाषचन्द्र बोस को रहस्यमय ढग से चलता किया। कही संघ ऊपर न जाए इसके लिए जल्दी से सारी बाते ठीक-ठीक कर ली गयी। नेहरूजी प्रधानमन्त्री घोषित हुए, हालांकि किसी भी प्रदेश कांग्रेस समिति ने नेता पद के लिए उनका नाम नही सुझाया। अंग्रेजो की सम्पत्ति 'स्टेट्समेन' यो ही नेहरू को 'एक अंग्रेज' कहकर विरुद नही गाता था, और अंग्रेज भी उन्हे सरे आम 'अन्तिम वाइसराय' घोषित करते थे।

सत्ता-हस्तान्तरण से सम्बन्धित सारी सचाई सामने आने को अभी बाकी है। और यदि, जब भी, जैसे भी, वह आती है तो लाखो लोगों को संगठित करते और उग्रवादी बनाने में तथा इस प्रकार अंग्रेजो के यहाँ से शीघ्र जाने मे संघ का

आचार-व्यवहार खूब साफ हो जाएगा। जो खडे-खडे प्रतीक्षा करते रहे उन्होंने भी सेवा की, हाथ में लाठी लेकर।

विभाजन, कांग्रेस और मुस्लिम लीग का राजनीतिक निर्णय था। विभाजन को रोकने में कांग्रेस असमर्थ थी लेकिन किसी दूसरे की सहायता लेना गवारा न था। सत्ता को हथियाने में कांग्रेस अपनी बपौती के चक्कर में थी तथा वह क्रांतिकारियों के त्याग और अहुतियों को भी भुनवा रही थी। संघ, शक्ति को अपने कब्जे में लेकर हस्तक्षेप कर सकता था, लेकिन समझदारी की कि नही किया।

चालीस के बीमार दशक में शायद विभाजन अनिवार्य हो गया था। लेकिन अब तो स्थितियाँ सामान्य होने को अग्रसर हो रही हैं। भू-राजनीतिक शक्तियाँ धीमे काम करती हैं पर निश्चयात्मक होती हैं। पूर्वी पाकिस्तान स्वतन्त्र हो गया और पश्चिम पाकिस्तान की स्वतन्त्रता भी दूर नही है।

इस बीच यह तो संघ का ही भय था जिसके कारण पाकिस्तानियों को कुछ खुदा का खौफ़ था और जिसके कारण पूर्ण सत्यानाश से बच गये। कश्मीर में जनमत संग्रह के विरुद्ध भी सरकार संघ की प्रतिक्रिया का भय बारम्बार दुहराती रही।

संघ पर बुद्धिजीवी-विरोधी होने का एक अजीब लांछन लगाया जाता है कि यह समाजवाद, पूंजीवाद, लोकतन्त्र, डिक्टेटरशिप की शास्त्रीय तू-तू, मैं-मैं में रुचि नही लेता। संघ निश्चय ही बहस-मुबाहसे करने वाली संस्था नहीं है। इन विषयों के शास्त्रीय तर्क-युद्ध उतने भी भूचाली नही होते जितने कि मध्ययुगीन प्रश्न कि आलपीन के सिरे पर पचास या सौ देवदूत नाच सकते है कि नहीं। राष्ट्रीयता के साथ उसकी प्रतिश्रुति के कारण संघ लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के प्रति गहरे रूप से प्रतिश्रुत है। राष्ट्रीयता कुछ नहीं है, परन्तु लोकतन्त्र और समाजवाद तो स्पष्ट रूप से परिभाषित है। ये, 'हमारे देश, हमारे लोग और हमारी संस्कृति' की राष्ट्रीय प्रतिश्रुति में अन्तर्निहित हैं। संघ के लिए श्री अरविन्द के उत्तरपाड़ा के भाषण के अनुसार', "राष्ट्रीयता भगवान् है।"

संघ के लिए गैरबुद्धिजीविता की कांग्रेसी शिकायत के लिए एक कांग्रेसी को याद रखना चाहिए कि छोटा या बड़ा एक पुस्तकालय संघ-कार्यालय के लिए अनिवार्य होता है जब कि ऐसा अधिकांश कांग्रेस-कार्यालयों के बारे में नहीं कहा जा सकता। इन संघ-पुस्तकालयों में वेद से लेकर विवेकानन्द तक तथा महाकाव्य, इतिहास और जीवनियाँ आदि सभी होते हैं। संघ-प्रचारकों को आदेश दिया हुआ होता है कि संघ का समस्त कार्य सम्पन्न करते हुए भी अपना अध्ययन चालू रखें।

यह भी धारणा बनी हुई है कि संघ किसी न किसी कारणवश अपनी शक्ति का प्रयोग ध्येय को बढ़ाने में काम में नही ला सका है। स्वयं वीर सावरकर ताना दिया करते थे : "संघ के कार्यकर्ता की समाधि पर यह लेख खुदा रहेगा —जन्म हुआ, सघ में प्रविष्ट हुआ और मृत्युलाम किया।"

कुछ समाजवादी और साम्यवादी नेताओं ने यह राय व्यक्त की कि वे संघ की शक्ति के थोड़े से हिस्से से ही देश पर शासन कर सकते थे। नतीजा यह निकाला कि संघ ने अवसर खो दिये।

मेरा ख्याल है कि संघ के उद्देश्यों के बारे में भारी गलतफहमी है। राज-नीतिज्ञ सदा अपने राजनीतिक चश्में से ही सब देखता है। वे यह विश्वास ही नही कर सकते कि कोई शक्ति के अलावा भी कुछ चाह सकता है। सन् १९५० में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने संघ के कार्यकर्ताओं को कांग्रेस में आने का निमन्त्रण दिया था, उनका ख्याल था कि संघ शक्ति में हिस्सा बँटाने में रुचि लेगा। लेकिन स्वयंसेवकों ने इस आमंत्रण में कोई रुचि नही दिखलायी संघ की सत्ता और राजनीति के प्रति अनिच्छुकता ने संघ के बारे में भारी गलतफहमियाँ फैलायी।

सच तो यह है कि संघ, राजनीतिक नही है। वह है, यदि कोई संज्ञा हो सकती है तो, 'सत्वनीतिक' (मेटापोलीटिकल)। वह सत्ता में तो रुचि नही रखता लेकिन देश की राजनीति को निर्मित करने वाले उपकरणों और शक्तियों के बारे में उसकी रुचि है लोगों और उसके चरित्र में, हमारी संस्कृति और उसकी समग्रता, देश और उसकी एकता तथा शक्ति मे उसकी अभिरुचि है। लेकिन संघ राजनीति से दूर भी और ऊपर भी वैसा ही रहना चाहता है, जैसा कि राजगुरु का प्रतिष्ठान होता है। यदि सत्ता के प्रति झुकाव होता तो सन् '४५ या उससे पूर्व भी केन्द्र में आने से उसे कोई नही रोक सकता था। संघ का जनता से लेकर प्रशासन के उच्चतम दण्ड तक जो प्रभाव रहा—सन् १९४७ में नयी दिल्ली में एक आई० सी० एस० 'शाखा' भी थी—वह एक दुर्जेय राज-नीतिक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो सकता था। लेकिन उसने अन्य मार्ग ही अपनाया। उसने वर्तमान राजनीति के पार भारत के भविष्य की ओर ही देखना पसन्द किया। समय आ गया है कि सब लोग स्थापित वास्तविकताओं को ही स्वीकारें और अवास्तविकताओं का गढ़ना बंद करें।

हाँ, जो लोग यह समझते हैं कि संघ से बस—क्या कई बसें ?—छूट गयी, उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि प्रतिष्ठान द्वारा उस पर थोपी गयी सारी लड़ाइयों के बाद भी भारत-सरकार के बाहर वही एकमात्र देश में अकेली संगठित शक्ति है

उसके सहने और झेलते जाने मे ही सघ का प्रभाव मनुष्य और परिस्थितियों पर तदनुरूप व्यापक हुआ है। उसने लाखों युवकों को राजनीति सम्पन्न बनाया और देश को ऐसे कार्यकर्ता तथा नेता दिये जो सभी पार्टियों के लिए ईर्ष्या हैं। सघ के लोगों में ही आज के कुछ बहुत अच्छे विचारक, लेखक, वक्ता, संगठनकर्ता संसद-निपुण मिल जाएँगे। सघ के होने पर भारत जो बहुत भिन्न दिखलायी देता है वह उसके न होने पर वैसा नही होता। शेष के साथ तो इतिहास ही न्याय करेगा।

